हारे

[द्वितीय भाग]

पगों के सहारे
पुरी सागर के किनारे

लेखक—

स्व० आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी म० के सुशिष्य
प० रत्न दार्शनिक प्रवक्ता श्री मनोहर मुनि जी म० 'कुमुद'।

पगों के सहारे

लेखक

जैनधर्म दिवाकर जैनागम रत्नाकर
स्वर्गीय आचार्य सम्राट्
पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज
के सुशिष्य
मुनि मनोहर 'कुमुद'
'संस्कृत विशारद'

सादर—समर्पण

जिनचरणानुरागी !

समाज हितैषी !

स्वाध्याय रसिक !

गुरुसेवा की

आदर्श मूर्त्ति !

आत्म-रश्मि के प्रेरक !

अपने श्रद्धेय गुरु-भ्राता

श्री रतन मुनि जी महाराज

के चरण-सरोजों में

मुनि मनोहर 'कुमुद'

पुस्तक

पगों के सहारे (भाग-२)

(कलकत्ता से पुरी)

लेखक

श्री मनोहर मुनि 'कुमुद'

'संस्कृत विशारद'

प्रकाशक

श्री दशा श्रीमाली वर्धमान

स्थानकवासी, जैन संघ, कटक

मुद्रणालय

दिग्विजय प्रिण्टिङ्ग प्रेस

कालीगली, कटक-२

विषय

विहार यात्रा के संस्मरण

प्रथम संस्करण

सन् १९७१

प्रतियें

१००० (एक हज़ार)

प्रकाशकीय

श्री बी०के० सेठ

समर्पित

श्रद्धेय श्री रतन मुनिजी म० के चरणों में

मूल्य २ रुपया

प्रकाशकीय

हमें आज अपने प्रिय पाठकों तथा विशेषकर चरणविहारी सन्त-वृन्द तथा साध्वी गण के कर-कमलों में यह पगों के सहारे 'द्वितीय भाग' अर्पित करते हुए अत्यन्त हर्ष हो रहा है। जब मनुष्य की मनोकामना पूरी होती है तो उसे प्रसन्नता होना स्वाभाविक है। श्री मनोहर मुनि जी म० की इस नवीन मनोरम कृति को पाकर आप सबको भी अवश्य हर्षानुभूति होगी। 'पगों के सहारे' 'प्रथम भाग' पहले भी आपकी सेवा में पहुँच चुका है। स्था० जैन गुजराती संघ कलकत्ता द्वारा प्रकाशित होकर। महारा[illegible] श्री जी की लेखनी ने 'देहली से कलकत्ता' तक की विहारयात्रा [illegible] चित्ताकर्षक चित्रण उसमें प्रस्तुत किया है। उस छोटी सी पुस्तिका ने सर्वत्र प्रशंसा पाई है और अनेकों प्रशंसा पत्र उसके सम्बन्ध में प्राप्त हो चुके हैं। अब पगों के सहारे 'द्वितीय भाग' आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

एक युग था कि साधु लोग कलकत्ता की ओर बढ़ने से घबराते थे। किन्तु धीरे-धीरे साधु-वृन्द इधर विचरने लगा। कलकत्ता संघ का प्रयास इस दिशा में अवश्य स्तुत्य है, जो साधु साध्वियों को इधर विचरने के लिये सतत् प्रेरित करता रहता है। कहना होगा कि 'देहली से कलकत्ता' तक का मार्ग अब काफी सुलभ हो गया है। पहले जैसी कठिनाई अब नहीं रही। वैसे

जैन मुनि के विहार में कठिनाइयें तो पग-पग पर खड़ी रहती हैं। जिन की गणना भी नहीं की जा सकती। राजस्थान, गुजरात तथा पंजाब जैसे क्षेत्रों में विचरने में भला क्या कठिनाई है? जहाँ चप्पे-चप्पे पर परिचित गाओं हैं और सब जगह अपने श्रावकों के घर मिल जाते हैं। वहाँ तो साधु के बावीस परीसह शायद दो भी नहीं रहते। किन्तु बिहार, वंगाल तथा उससे भी कहीं बढ़कर उड़ीसा में तो बाईस के चवालीस परीसह बन जाते हैं साधु के लिये। क्योंकि इन प्रान्तों में तो दूर-दूर तक श्रावक के दर्शन भी नहीं होते। मार्ग भी कठिन। गाओं भी दूर-दूर। लोग भी अपरिचित। आहार-पानी की भी समस्या और अनुकूल स्थान का भी दूर तक अभाव ही अभाव। साधु को केवल चलना ही तो नहीं, उसके साथ उसे अपनी मर्यादाओं तथा नियमों का भी ध्यान रखना होता है। इसलिए आज के वायुयानों तथा राकेटों के प्रगतिशील युग में जैन मुनि की पद-यात्रा जीवन की एक कठोर साधना है। जो वह शताब्दियों से करता चला आ रहा है।

पद-यात्रा के सम्बन्ध में प्रगतिवादी लोगों के विचार भले कुछ हो किन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि पद-यात्रा से सन्त जन-जन के सम्पर्क में आता है। उनके दुःख सुख की उसे अनुभूतिएं होती हैं। प्रकृति के विराट्-प्रांगण में उसे मुक्त विहार करने का सौभाग्य मिलता है और जीवन में वह उनसे बहुत कुछ सीखता है। उसकी साक्षात् अनुभूतियों से फिर करोड़ों हृदय

…भान्वित होते हैं। साधक के जीवन को आसक्ति तथा मोह के बंधन नहीं बाँधते। उसके जीवन में प्रेम तथा विश्व मैत्री का एक निर्मल प्रवाह चलता रहता है। उसके तपस्वी जीवन से कोटि-कोटि मानवों को जीवन की आध्यात्मिक प्रेरणा मिलती है। और उसके पावन उपदेशों से बहुत कुछ सीखने का प्रयत्न करते हैं। घर-घर में धर्म एवं अपनी संस्कृति का प्रचार होता है। अपनी भूत तथा वर्त्तमान स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन भी घूमने फिरने से ही होता है। कलह, गुटवन्दी तथा राग द्वेष के विषैले कीड़ों से अपने संयम को बचाने के लिये विहार-यात्रा सचमुच एक अचूक औषध है। इस तथ्य को समाज का समस्त मनीषी वर्ग एक आवाज़ से स्वीकार करेगा। स्थानकों के ऊँचे मंचे पर बैठकर साधु की इस चर्या का बखान तो सब करें। किंतु अपने अपने क्षेत्रों का मोह छोड़कर शायद इन अनजाने प्रदेशों में पद-यात्रा के कठोर व्रत का शायद स्वागत करने के लिये कोई जल्दी से तैयार न हो। यदि वे सब हृदय से ऐसा करनेके लिये तत्पर हों जाएं तो भगवान महावीर की अहिंसा बाँसुरी सारे विश्वमें बजाई जा सकती है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

स्व० आचार्य सम्राट पूज्य श्री आत्माराम जी म० के सुशिष्य पं० रतन प्रखर वक्ता एवं दार्शनिक सन्त श्री मनोहर मुनि जी तथा उनके सहयोगी धर्म संगीतिका के मधुर गायक श्री विजय मुनिजी म० कलकत्ता चातुर्मास के पश्चात् खड़गपु… पधारे। कटक श्री संघ आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। औ…

उड़ीसा में पदार्पण करने की पुरज़ोर प्रार्थना की। उधर से बालासोर श्री संघ ने भी आप श्री जी को उड़ीशा प्रदेश को पावन करने के लिये आग्रह किया। आप श्री जी ने हमारी प्रार्थना का ध्यान रखते हुए उड़ीसा की ओर बढ़नेकी स्वीकृति प्रदान की।

महाराज श्री जी लगभग दो वर्षों से इधर विचर रहे है। कटक तथा भुवनेश्वर को आप के यशस्वी चातुर्मासों का भी महान् लाभ प्राप्त हुआ है। जनता को पहली बार ऐसे ओजस्वी प्रवचन सुनने का सौभाग्य मिला। आपके उड़ीसा के धरती पर आनेसे अहिंसा धर्म का अद्वितीय उद्योत हुआ है। उड़ीसा जैसे मत्स्य देश में अहिंसा का प्रचार करना एक महान् उपकार है, जो सदैव इतिहास के पन्नों का गौरव बना रहेगा। ग्राम-ग्राम में घूमकर आपने अहिंसा के सलिल से जन-मानस को सींचने का अभूतपूर्व कार्य किया है। परिणाम स्वरूप एक अहिंसा दर्शी समाज की रचना की गई है। जो किसी दिन उड़ीसा में श्रमण-संस्कृति पर आधारित एक विशुद्ध निरामिष समाज होगा। किन्तु इसे सन्तों के निरन्तर सहकार की अपेक्षा है! अहिंसा की ज्योति को सदा प्रज्वलित रखने के लिये एक 'अहिंसा स्तूप' की बृहद् योजना भी हमारे समक्ष है। यह भी मुनि द्वय की सत्प्रेरणा का सुफल है। इन सभी मंगल सुकृतों को अधिक से अधिक साफल्य प्रदान करने के लिये समाज के मनीषी संतों को इधर विचरने की नितान्त आवश्यकता है।

हम महाराज श्री जी के अति आभारी हैं जिन्होंने अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी यह पुस्तक 'पगों के सहारे' द्वितीय भाग लिखकर हमारी अभिलाषा को पूरा किया है।

हम चाहते थे कि एक ऐसी पुस्तक तैयार हो जो उड़ीसा की ओर बढ़ने वाले संयमी चरणों को मार्ग दर्शन दे सके।

इस पुस्तक में 'कलकत्ता से पुरी' तक की यात्रा का विवरण दिया गया है। पुस्तक अपने आप में एक यात्रा है। जिसे खोलकर पढ़ते ही पाठक को यात्रा जैसा आनन्द आने लगता है और विहार के कष्ट बिलकुल उठाने नहीं पड़ते। पुस्तक को पत्र-शैली से इतना रोचक बना दिया गया है कि इसे आद्योपान्त पढ़े बिना छोड़ने को दिल नहीं करता। यह महाराज श्री जी की लेखनी की अपनी एक विशिष्टता है।

मुझे पूरा विश्वास है कि जनता महाराज श्री जी की नव-नव अनुभूतियों को पढ़कर अपने ज्ञान-कोष में कुछ अभिवृद्धि करेगी। और साधु साध्वियों को यह पुस्तक महाराजा खारवेल की इस धरती की ओर बढ़ने के लिये उत्साहित करेगी। मुझे पूरी आशा है कि यदि सन्त पुरुष कलिंग को भी अपनी विहार-भूमि बना लें तो इधर भी श्रमण संस्कृति के द्वार खुल सकते हैं और फिर किसी सन्त को इधर विचरने का कोई कष्ट नहीं हो सकता।

मैं पुनः विनीत प्रार्थना करूँगा कि जैन सम्राट महाराजा खारवेल की इस भूमि की उपेक्षा न करें और मुनिवृन्द अपने पावन-पाद-पद्मों से इसे समय-समय पर पावन करते रहें।

इस पुस्तक के प्रकाशन में कलकत्ता के भाइयों ने भी द्रव्य की उदार सहायता प्रदान की है। जिसके लिये हम आपके आभारी हैं।

आपका
बाबूलाल भाई के० सेठ
अध्यक्ष
श्री दशा श्रीमाली वर्धमान स्थानकवासी
जैन संघ, कटक-२
उड़ीसा

अनुक्रमणिका

स्याई
के
दो
बिन्दुओं
से

दो सुविनीत शब्द

यह 'पगों के सहारे' द्वितीय भाग है। कलकत्ता से पुरी तक यात्रा के संस्मरण चित्र। यह पुस्तक भी पत्र-शैली में लिखी गई है। प्रायः यात्रा की पुस्तकें शुष्क एवं नीरस हुआ करती हैं। यात्रा अपने आप में तो जीवन का महत्त्वपूर्ण प्रसंग है। और वह भावी सन्तति के लिए प्रेरक तथा उद्‌बोधक भी हुआ करती है। वह स्वयं तो सरस ही है। किन्तु यात्रा के विवरण में जब अनावश्यक तथा अधिक लम्बे-चौड़े प्रसंग जोड़ दिये जाते हैं तो पाठक के मस्तिष्क के लिये वह यात्रा अवश्य बोझल बन जाती है। आवश्यक तथा प्रेरक प्रसंग तो देने ही पड़ते हैं। उनको तो मैंने भी छोड़ा नहीं। किन्तु पुस्तक की रोचकता का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है और अनावश्यक विस्तार से लेखनी की पूरी-पूरी रक्षा की गई है।

ये पत्र मैंने परम श्रद्धेय श्री रघुवर दयाल जी म० के सुशिष्य श्री भद्रमुनिजी म० के नाम लिखे हैं। श्री भद्रमुनि जी सचमुच भद्र मुनि ही हैं। नाभा मिलन की संस्मृतिएं अभी तक मेरे हृदय-पटल पर उसी तरह अंकित हैं और अभी तक नवीन ही प्रतीत होती हैं। सदा वन्दनीय श्री रघुवर दयालजी म० की मुझ पर अपार कृपा रही है। और दूर देश में भी उनकी कृपा सदा आशीर्वाद के अविरल स्रोत मेरी ओर बहता रहता है। यह पुस्तक विहार-यात्रा की संस्मरण-मंजूषा तो है ही किन्तु यह किसी की मधुर संस्मृतिओं का अमर कोष भी अवश्य बनी रहेगी।

मार्ग में ठहरने के स्थानों तथा माइलेज का हिसाब-किताब सब मेरे सहयोगी श्री विजय मुनि जी ही रखते रहे हैं। उसी के अनुसार यहाँ लिखा गया है। कहीं कुछ भूल भी हो सकती है। प्रिण्टिङ्ग, प्रूफ रीडिंग तथा अन्य कई तरह की त्रुटिएं भी रह सकती हैं क्योंकि मनुष्य स्वभाव से ही गलतियों का पुतला है। सहज भाव में होने वाली भूलें सदैव क्षम्य होती हैं।

आशा है कि मेरी यह लेखनी चरण-विहारी सन्तों के मन को कलिंग की ओर अग्रसर होने के लिये अवश्य प्रेरित करेगी। और तभी मेरा यह प्रयास सफलता से विभूपित होगा।

मनोहर मुनि 'कुमुद'

भुवनेश्वर

धर्म-संगीतिका के मधुर-गायक श्री विजय मुनि जी महाराज।

कलकत्ता

से

पुरी

मंज़िल से भी नावाकिफ हैं
राह से भी आगाह नहीं।
अपनी धुन में फिर भी रवाँ हैं
यह भी अजब दीवाने हैं॥

—आज़ाद

★

क्यों ? किसी रहबर से पूछूँ
अपनी मंज़िल का पता ?
मौजे-दरिया खुद लगा लेती है
साहिल का पता॥

—ताज-मुनव्वर

★

अहले हिम्मत ज़िले मकसूद तक आ ही गये।
बन्दये तकदीर किस्मत का गिला करते रहे-॥

—चकबस्त

★

एक
संशुभ
आकांक्षा
उधर से !

पत्र !

(१)

जैन स्थानक
बांस बाजार
जालन्धर
२-३-७१

श्रद्धेय श्री मनोहर मुनिजी महाराज

सादर वन्दना सुखसाता !

कल ही जगन्नाथ पुरी से आपका पत्र प्राप्त हुआ। प्रतिपल वन्दनीय पूज्य श्री रघुवर दयालजी महाराज के चरणों में आपका श्रद्धा-प्लावित वन्दन उपस्थित कर दिया गया। उन्होंने आपको तथा आपके सहयोगी श्री विजय मुनिजी को वहुत-वहुत सुखसाता की कृपामयी पृच्छा की है।

सच, आप कितनी दूर हम से ! कहाँ जालन्धर और कहाँ जगन्नाथ पुरी ! सोलह सौ मील दूर से आने वाले आपके पत्र ने हृदय को ग्रीष्म ऋतु के वादलों की तरह शान्ति भी दी है और साथ ही स्मृतिलोक में एक तूफान भी लाया है। विरह की आत्मा को वढ़ाकर मानस के शान्त सागर को क्षुब्ध भी कर दिया है इसने। इतनी दूर से आँखें आँखों को नहीं देख सकती, किन्तु पत्र की चन्द पंक्तिएं दो मूक हृदयों को वरवस जोड़ देती हैं। आपकी सुख शान्ति का पत्र तो कभी-कभी

मिलता ही है। और मैं भी आपके चरणों में उत्तर भी देता रहता हूँ, किन्तु इससे क्या? पत्र तो हृदय को और अधिक व्याकुल बनाकर आँखों की प्यास को और बढ़ा देता है। किन्तु, फिर भी पत्र से 'डूबते को तिनके का सहारा' तो होता ही है। चलो, एक सहारा तो है दूर से मिलने का। इतना ही सही।

पूज्य गुरुदेव श्री रघुवर दयालजी महाराजे तो आपको एक क्षण भी नहीं भूलते। नाभा मिलन की मधुर स्मृति सिनेमा की रील की तरह उनके हृदय-पटल पर घूमा-फिरा करती है। आपका पत्र जब भी मैं उनके चरणों में सुनाता हूँ, तभी उनकी पलकों में पानी भरने लगता है और बरबस कहने लगते हैं कि मनोहर तो इतनी दूर चला गया है कि अब न जाने कब मिलन होगा। सच, उनके रोम-रोम से आपके लिए आशीर्वाद तथा स्नेह की निरन्त वर्षा होती रहती है। आप उनके कोमल कमनीय तथा नवनीत हृदय को तो जानते ही हैं। और फिर आपके लिये तो उनके मन में अपार स्नेह का एक समुद्र ही उमड़ता रहता है। वे आपकी प्रतिष्ठा तथा यश का समाचार सुनकर एकदम गद्‌गद हो जाते हैं। और आपकी समुन्नति के लिए सदैव शुभ-कामना रहती है उनके परम पावन हृदय लोक में।

श्रद्धेय राम मुनिजी तथा प्रिय श्री सतीश मुनिजी के मनको भी आप की मधुर-स्मृति कभी छोड़ती नहीं है।

आपके चिर-अमिलन तथा विच्छोह से यह मन बेचैन तो अवश्य रहता है, किन्तु जब ये मंगल स्वर कानों में पड़ते हैं कि आपके उधर पधारने से उड़ीसा जैसा मत्स्य देश में अहिंसा की ज्योति जग रही है। जैन धर्म का प्रसुप्त गौरव पुनः अंगड़ाई लेकर जाग रहा है। जिन शासन की विरान बगिया में फिर से फूल आने लगे हैं। पथ-विकल मानव, जीवन की सम्यक राहों को फिर से पहचानने लगा है। वहाँ! तब इस विछोह-विकल हृदय को अवश्य राहत मिलती है। बोझिल दिल एकदम हलका हो जाता है। आखिर दुःख सहकर ही तो कुछ मिलता है। आपका परिश्रम व्यर्थ नहीं जा रहा। वहाँ की ऊसर धरा उर्वरा बन रही है। जैनत्व के बीज अंकुरित हो रहे हैं। एक दिन ये अवश्य श्रमण संस्कृति के लहलहाते सफल वृक्षों का रूप लेंगे। भावी पीढ़ी इन पादपों की शीतल छाया तथा मधुर फलों को अवश्य आस्वादन करेगी। सच इससे हमारे मन को एक अद्वितीय संतोष मिलता है। और सारा दुःख भूल जाता है। आपके पत्र से कुछ ऐसा झलकता है कि अभी तो आपके चरण उड़ीसा के रजकणों को अपने मंगलमय संस्पर्श से परिपूत करेंगे। और आपका आगामी चातुर्मास भी उत्कल के किसी सुयोग्य क्षेत्र में ही होगा। आपने अपने पत्र में वैसे चातुर्मास का कोई संकेत तो नहीं किया। किन्तु, आपकी पाती के मूक अक्षरों के अन्तस्तल में कुछ ऐसा ही छिपा हुआ भाव मालूम पड़ता है। अच्छा ही है यदि प्यासी धरती को कुछ पानी और मिल जाये।

अच्छा, तो मैं अब आप के समक्ष अपनी हृदय-मंजूषा खोलने चला हूँ। अपने मन की एक चिर पालित जिज्ञासा तथा उत्कण्ठा का द्वार उन्मुक्त करने लगा हूँ।

आपकी 'देहली से कलकत्ता' की मनोरम विहार-झाँकियों की मनोहर पुस्तक 'पगों के सहारे' मिली। एकान्त में बैठकर शान्त हृदय से उसके एक-एक अक्षर का रसास्वादन किया।

मेरा आपसे विनीत प्रश्न है कि आप 'कलकत्ता से जगन्नाथ पुरी' की विहार-यात्रा लिखने का संकल्प कर रहे हैं क्या? आपके मानस में यदि इस दिशा में विचार गतिशील है तो फिर मेरी उत्कण्ठा की संपूर्ति स्वतः ही हो जायेगी। और यदि आपका उत्तर नकारात्मक ही है तो मेरी साग्रह प्रेरणा है कि मेरी उत्कण्ठा का ध्यान रखते हुए इस ओर अवश्य कुछ लक्ष्य दें। मैं आपके साथ कदम से कदम मिलाकर तो नहीं चल सका। किन्तु आपकी लेखनी द्वारा उत्कीर्ण पंक्तियों को पढ़कर आपकी अनुभूतियों से लाभान्वित होने की एक उत्कट अभिलाषा अवश्य बनी रहती है। यह तो मैं जानता हूँ कि अभी तो आप भ्रमण में हैं। कभी कहीं तो कभी कहीं। एक जगह तो विहार में रहना नहीं होता। किन्तु निवृति के क्षणों में आप अवश्य कुछ लिखने का कष्ट करें। आशा करता हूँ कि मेरी प्रेरणा व्यर्थ नहीं जायेगी। मुनि प्रेम सुख की तरह मेरी उत्कण्ठा के कण्ठ में भी आप स्वीकृति की जयमाला

डालकर इसे पूर्ण तथा तृप्त करेंगे। अधिक क्या लिखूँ। आपकी यात्रा सदा मंगलमय रहे। आप जहाँ भी पधारें, सुखेसाता का पत्र देते रहा करें। श्री विजय मुनिजी को बहुत-बहुत सुख साता।

आपका विनीत

भद्र मुनि

एक
पुनीत
संपूर्ति
इधर से !

पत्र !

(२)

जगन्नाथ पुरी
गोशाला भवन
१५-३-७१

स्नेहशील श्री भद्र मुनिजी

सस्नेह सुखसाता ।

कल आपके कुछ स्नेहाक्षरउपलब्ध हुए। पत्र के संपुट में मानो आपका स्वयं हृदय ही मिल गया हो। सच, ऐसी कुछ मधुर-मधुर अनुभूति ने मानस को एकदम गुदगुदा सा दिया।

कृपामूर्त्ति परम पूज्य श्री रघुवर दयालजी महाराज का आशीर्वाद मेरे सौभाग्य की एक मंगल सूचना है ही । किन्तु वालमन प्रिय श्री राम मुनिजी तथा स्वाध्याय रसिक तथा गुरु सेवा की मंजुलमूर्ति श्री सतोश मुनिजी की कृपा तथा स्नेहाभिविक्त संस्मृतिएं भी मेरे लिए कम उत्साहवर्धक नहीं है। मेरी विहार यात्रा की सफलता का रहस्य वास्तव में आप समस्त महानुभावों की शुभ कामनाओं तथा कृपामय हृदयों की सच्ची शुभाशिषों में सन्निहित है। मैं ज्ञानहीन तथा अनुभव शून्य तो क्या धर्म प्रचार कर सकता हूँ भला । और क्या जिन शासन की सेवा हो सकती है इस प्रमाद भरे जीवन से। किन्तु हाँ ! महापुरुषों की दया दृष्टि से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। मेरे मन का यह अडिग विश्वास तथा अटल

निष्ठा ही मुझे जीवन की दुर्गम घाटियों से पार कर रही है। जिन शासन पर निछावर करने के लिए तुच्छ तथा नश्वर प्राणों के अतिरिक्त और अपने जीवन आँचल में है ही क्या? यदि ये अहिंसा तथा सत्य के प्रचार में ही समाप्त हो जाये तो इससे बड़ा इनका और सदुपयोग क्या होगा। बस केवल एक यही धारणा लेकर जीवन में निरन्तर चलता रहता हूँ। जीवन की इस यात्रा में यदि आप भी मेरे साथ होते तो क्या ही आनन्द आता! आप दूर से विरह-विकल तो होते हैं, किन्तु समीप आकर अपनी तथा मेरी इस विकलता को दूर कर दीजिए न! अच्छा यह तो एक मीठा सा उपहास किया है आप से। मैं आपकी परिस्थिति को खूब समझता हूँ। श्रद्धेय पूज्य श्री रघुवर दयालजी महाराज की चरण सेवा का आपको जो महान लाभ मिल रहा है, शायद ऐसे दुर्लभ क्षण जीवन में फिर नहीं मिलें। विचरण तो साधु को जीवन भर करना है, किन्तु गुरु-सेवा की घड़िएं जीवन में नियत होती हैं। आपके सेवानिरत जीवन से सच, मैं अति प्रभावित हूँ और आपको इसके लिए बधाई देता हूँ। चिर समय से आप से मिलने का तथा बड़े महाराज श्रीजी के दर्शनों का मुझे सौभाग्य नहीं मिला। नाभा मिलन के पश्चात् आप पश्चिम की ओर और मैं पूर्व की ओर बढ़ता रहा, फिर भला मिलन कैसे हो सकता था? दोनों के बीच मार्ग की दूरी बढ़ती चली गई। दूरी के साथ उत्सुकता भी बढ़ी। एक दूसरे से दूर होकर भी हृदय तो कभी अलग नहीं हुए। श्रद्धेय

श्री रघुवर दयालजी महाराज के चरण कमलों पर यह मन मधुप सा सदा मंडराता रहता है। केवल स्मृति पद्म पत्रपर बैठने से इसकी अधीरता बढ़ जाती है। किन्तु साक्षात चरण-कमल मिलने पर ही इसे वास्तविक शान्ति मिल सकती है। महान पुण्योदय से ही महान् आत्मा के दर्शन हो पाते हैं। श्रद्धेय महाराज श्रीजी के पुनीत दर्शन के लिए हृदय लालायित होने पर भी रास्ते के फासले उसे वेवस कर देते हैं। उस मंगल घड़ी को प्रतीक्षा में हूँ जबकि महाराज श्रीजी के वरद हस्त का चन्दन-स्पर्श पाकर मेरे शरीर का प्रत्येक रोम अपने सौभाग्य पर अठकेलियाँ करेगा। अभी तो पत्राक्षरों में ही आशीर्वाद की सुरभि पाकर हृदय सुरभित हो जाता है। इस दास पर महाराज श्रीजी का कृपावर्षण सतत् होता रहे, बस एक यही अभ्यर्थना है। मैं आपसे इतनी दूर तो आ ही गया हूँ और फिर मेरे सहयोगी श्री विजय मुनिजी भी मेरे कदमसे कदम मिलाकर चल ही रहे हैं। इसलिए मन ने यही सोचा कि इधर कुछ समय और घूम-फिर लिया जाये। क्योंकि बार-बार तो इतनी दूर आना होता नहीं। एक बार एक प्रान्त छोड़ दिया जाये तो फिर दोबारा उस प्रदेश में आना किस्मत तथा संयोग से ही होता है। कटक चातुर्मास के पश्चात् आन्ध्र की ओर बढ़ने का विचार कुछ मूर्त रूप ले रहा था। किन्तु, भुवनेश्वर और जटनी क्षेत्रों में कदम रखने के पश्चात् विचारों की दिशा एकदम बदल ही गई। इन क्षेत्रों में जैनों की अत्यल्प संख्या होने से अधिक

दिने रुकने का ख्याल नहीं था। किन्तु अजैन जनता में धर्म की एक अनुपम जाग्रती और सत्संग का अत्यधिक आकर्षण देखकर हृदय ने इस प्रदेश को लाङ्गना स्वीकार नहीं किया। लोगों की श्रद्धा और धर्म प्रेम ने पैरों को एक प्रकार से बाँध सा लिया। हालांकि मद्रास श्री संघ का भी आगामी चातुर्मास का भाव भरा विनती पत्र भी आया हुआ है। इधर भुवनेश्वर तथा जटनी दोनों क्षेत्रों की चातुर्मास की ज़ोरदार विनतिएं चल रही हैं। हृदय में निश्चय हो चुकने पर भी अभी किसी को कुछ निर्णय नहीं दिया। किन्तु आपको आत्मीय समझकर हृदय की बात लिख रहा हूँ कि हमारा विचार इस वर्ष भुवनेश्वर में चातुर्मास करने का है। आगे तो सब कुछ समय के ही अधीन है। अभी हम पुरी में आए ही हैं और श्री जगन्नाथ गोशाला भवन में ठहरे हुए हैं। यहाँ आने पर सबसे पहले लुधियाना, आगरा तथा आप श्रीजी के चरणों में ही पत्र दिये थे। बहुत दिनों से आपकी सुख शान्ति का कोई पत्र नहीं मिल रहा था। और यह भी कुछ मालूम नहीं था कि इन दिनों आप कहाँ विराजते हैं। कुछ दिन हुए कि लुधियाना से श्री सोनीराम जी का पत्र मिला कि जालन्धर से पूज्य श्री रघुवर दयालजी महाराज ने कटक सम्मेलन का चित्र-पुस्तक मंगवाया है। तब मालूम पड़ा कि आप जालन्धर की जनता में अपने उपदेशों का प्रसाद बांट रहे हैं। इसी आधार पर एक पत्र जालन्धर के पते पर आते ही आपके चरण सरोजों में पहुँचाने के लिए

पत्र-पात्र में अर्पित करवा दिया। इतना तो मैं जानता था कि बड़े महाराज का स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं रहता, इसलिए विहार अधिक तथा दूर तक नहीं होता होगा। कहीं कपूरथला तथा जालन्धर के आस पास ही होंगे। किन्तु फिर भी निश्चय के विना पत्रों का संपर्क जुड़ना जरा कठिन हो जाता है। आपने अपने पत्र में महाराज श्री जी के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में तो कुछ लिखा ही नहीं। इतना कुछ तो लिख डाला किन्तु लेखनीय वात तो लिखी ही नहीं। महाराज श्री जी के स्वास्थ्य के बारे में लिखना मत भूला करें आप।

पुरी में हमें सप्ताह दो सप्ताह सम्भव हैं कि लग जायें क्योंकि अभी तो घूम फिर कर इसका कुछ देखा ही नहीं। होली चातुर्मास भी यहीं होगा और चातुर्मास का निर्णय भी। अभी चातुर्मास में तो चार मास पुरे पड़े हैं। और यहाँ सारा समय घूम घूमा कर ही गुजारना होगा। क्षेत्र तो इधर पंजाब जैसे नहीं हैं। जहाँ हर प्रकार की सुविधा हो। यहाँ तो सारे दिन ग्राम-ग्राम में फिर-फिरा कर ही गुजारने होंगे। सब जगह यहाँ प्रवचन, वार्तालाप तथा प्रश्नोत्तर के कार्यक्रम तो रखने ही पड़ते हैं। विना इसके इधर काम नहीं चलता। रौनक नहीं वनती और अनुकूल वातावरण नहीं जमता। पंजाव, राजस्थान तथा गुजरात जैनों के होमलैण्ड (Home Land) हैं। वहाँ वातावरण जमाने के लिए सन्तों को कुछ करना धरना नहीं पड़ता। सब कुछ तैयार मिलता है। ऐसे शाहनशाही मठ इधर

वहाँ भला ? इधर तो साधु को पूरी मेहनत मजदूरी करनी पड़ती है। तब जाकर कहीं चार दिन रौनक में गुजार सकता है।

आपने मुझे 'कलकत्ता से पुरी' तक विहार झाँकी लिखने की प्रेरणा दी है और इसे अपनी उत्कंण्ठा के रूप में व्यक्त किया है। मैं इसका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ। किन्तु लेखनी का यह व्यायाम विहार के कठिन क्षणों में नहीं हो सकेगा। जहाँ तक मैं समझता हूँ कि इसके अनुकूल समय चातुर्मास से पहले शायद नहीं मिल सकेगा। भुवनेश्वर पहुँच कर मैं अवश्य आपकी अभलिाषा को तृप्ति दे सकूँगा। पहले भी हम भुवनेश्वर के प्राङ्गण में एक मास गुजार आए हैं। इसलिए वहाँ के वातावरण से मैं अच्छी तरह परिचित हूँ। हम वहाँ देवकरण जुगलकिशोर के बगीचे में ठहरे थे। ये साहब राजस्थान के झुनझुनु के रहने वाले हैं। इसलिए यह बगीचा 'झुनझुनुवालों का बगीचा' के नाम से सारे भुवनेश्वर में प्रसिद्ध है। चातुर्मास भी शायद इसी बगीचे में होगा। वहीं-कहीं वृक्षों की शीतल छांह तले किसी शान्त-एकान्त कोने में बैठकर आपके लिए अपनी-प्रवास यात्रा के पन्ने लिख सकूँगा। आपकी अभिलाषा तो मेरी अपनी ही अभिलाषा है और फिर यह है भी नन्हीं सी। आपकी आकांक्षा को प्रशान्ति देना अपनी ही एक नवीन कृति को जन्म देना है। एक दूसरी पुस्तक 'पगों के सहारे' जनता के कर कमलों को सुशोभित करेगी इस आपकी अभिलाषा की पूर्ति के बहाने।

जब कभी भी मेरी सेवाकी आवश्यकता हो मैं सदैव प्रस्तुत हूँ। पूज्य महाराज जी के चरणों में मुनिद्वय का सादर वन्दना अर्ज करके सविनय सुखसाता पूछें। और अपने इस बालकको कृपामयी पलकों की शीतल छाँह तले रखने की कृपा करते रहें। यह मेरी श्रद्धेय चरणों में विनीत-विनती भी कर देना।

मैं जहाँ भी जाऊँगा पत्र दूगाँ। आप जिस ओर भी चरण वढ़ाएँ और जहाँ भी कुछ दिन ठहर कर उपदेशामृत के कण वरसायें, वहीं से अपने पूरे अते-पते के साथ पत्र देने का अनुग्रह करें श्री राम मुनिजी तथा सतीश मुनि जी को यथा योग्य वन्दना सुख साता। अब दिन के ग्यारह बजे हैं। भोजन का समय हो रहा है। अपनी कलमको पत्र के संस्पर्श से दूर कर रहा हूँ केवल इतना ही लिखकर।

आपका

मुनि मनोहर 'कुमुद'

खण्डगिरि उदयगिरि
(उड़ीसा)
७-५-७१

स्नेहमय श्री मुनि भद्रजी

स्नेह सहित सुखसाता।

आपके पत्र का उत्तर आपको पुरी से दिया था। मिला तो होगा आपको। किन्तु आप श्री जी की ओर से अभी उसका कोई प्रत्युत्तर नहीं। खैर कोई बात नहीं। विहार में पत्र का सिलसिला कुछ अस्त व्यस्त ही रहता है। पत्रों का मिलन भले ही न हो किन्तु हृदय मिलन तो सदा रहता ही है। स्मृति का स्मृति से मिलन तो प्रतिपल होता रहता है। पूज्य श्री जी के चरणों में हम दोनों मुनियों की ओर से वन्दना कहें और सुखसाता पूछें।

हम पुरी की यात्रा समाप्त करके तथा जटनी एक कल्पावास और गुजारकर और खुरदा रोड़ से होते हुए वापिस खण्डगिरि-उदयगिरि के आँचल में पहुँच गये हैं। इधर उड़ीसा में वैसे भी सरदी कम ही पड़ती है किन्तु अब तो सरदी के सिरपर गरमी सवार हो रही है। वर्षाकाल इधर शुरु हो गया है। इधर बरसात कुछ जल्दी आरम्भ होती है और बहुत अधिक होती है। वर्षावास भी लगने ही वाला है। इसलिए

भुवनेश्वर के पास-पास पहुँच गये हैं। आपके जहाँ भी ग्रीष्म ऋतु की विकलता कुछ बढ़ने लगी होगी। शरीर को कंपा देने वाली पंजाबी सरदी से आपको कुछ राहत भी मिली होगी। बरसाती बादलों ने तो शायद पंजाब के आकाश पर अभी अपना विहार आरम्भ नहीं किया होगा। किन्तु उत्कल देश के नील गगन पर काले बादलों के आक्रमण शुरु हो गये हैं। श्यामल घटाओं की श्यामल छाया प्रायः रोज ही धरती पर पड़ जाती है। नदी-नालों में तूफानी जवानी आ गई है। खेतों के आँचल पानी से भर गये हैं। सोयी हुई वनस्पती अंगड़ाई लेकर जाग उठी है। हरे-भरे वृक्षों की हरियाली में पर्वतों के पाषाण हृदय छिप गये हैं। प्रायः लोग 'दूरस्थाः पर्वताः रम्याः' कहकर पर्वतों पर एक व्यंग्य कसा करते हैं किन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि वर्षा ऋतु में तो यह उक्ति चरितार्थ नहीं होती। मुझे तो अब 'निकटस्थाः पर्वताः रम्याः' ही लगते हैं महाराजा खारवेल के सुप्रसिद्ध अभिलेखांकित हाथी गुफा के मुख द्वारपर बैठकर मैं आपको ये कुछ स्नेहाक्षर लिख रहा हूँ। इस समय सुबह के आठ बजे हैं। बहुत से यात्री मेरे पास से आ जा रहे हैं। किन्तु मैं खोया हुआ हूँ अपने ही किसी अनूठे ध्यान में। क्योंकि नियम ही है यह इस सृष्टि का कि :—

जो भी जिसको प्रिय लगे, है वह ही उसका प्राण।
जो जिसको भाये नहीं, है वह उससे वे भान ॥

उदयगिरि की शान्त तथा नीरव गुफाओं के चिन्तन में कुछ अन्य भाता नहीं। केवल यह नीरव कक्ष आपके लिए स्नेहाक्षरों का सृजन ही कर रहा है। और आपकी मधुर स्मृति को तेज करता जा रहा है। शायद आपकी स्मृति की धड़कनें इतनी तेज नहीं होगी। क्योंकि वहाँ का वातावरण यहाँ सा शान्त-एकान्त तथा निस्तब्ध नहीं होगा। इधर और उधर के वातावरण की शान्ति में एक महान् अन्तर देखता हूँ। क्षेत्रों की गति विधियों से खूब परिचित हूँ। उधर बहन-भाइयों के बड़े-बड़े मेले लगे रहते हैं जिनके कोलाहल में स्मृति की समस्त धड़कनें विलीन हो जाती हैं। आहार-पानी के लिए भक्तों के मनुहार होते हैं। चातुर्मास की विनतियों पर खूब नखरे बाजी होती है। व्याख्यानों के बड़े-बड़े ठाठ जमते हैं। धन्य हो! धन्य हो!! की दुन्दुभिएं बजती हैं। प्रशंसा की तन्त्री से वाह! वाह!! की स्वर लहरिएं निकलकर कानों को मुग्ध कर देती हैं। ऐसे आकर्षक तथा मोहक वातावरण में भला कौन किसी प्रवासी को याद कर सकता है। समाज के झमेलों से फुरसत मिले तभी है न। आप भी कुछ इन दिनों अधिक उलझे हुए मालूम पड़ते हैं। क्योंकि एक पत्र का उत्तर भी आप नहीं लिख सके। अच्छा। जब भी आपको दो क्षण शान्ति के मिलें तभी दो अक्षर लिख देना। मेरे लिए तो वे ही बहुत होंगे। उसी में मुझे सब कुछ मिल जायेगा क्योंकि कहा भी तो है—

उसकी पाती के दो अक्षरों में मैंने उसकी तस्वीर देख ली।
सच, उसकी मधुर स्मिति में मैंने अपनी तकदीर देख ली॥

जालन्धर
जैन स्थानक
१६-५-७१

श्रद्धेय श्री मनोहर मुनिजी महाराज
के चरणों में
सादर वन्दना तथा सुखसाता।

आप श्री जी का एक पत्र पुरी से मिला था और आज खण्डगिरि से। हृदय एकदम गदगद हो गया। पत्र लिखने के लिए कई बार लेखनी हृदय के आदेशानुसार तैयार हुई किन्तु फिर कोई न कोई बाधा आकर खड़ी हो गई। और कलम और कागज को एक ओर रखना पड़ा।

क्षेत्रों के वातावरण से तो आप भली भाँति परिचित ही हैं। यहाँ कोई न कोई अड़चन लगी ही रहती है। आज कुछ फुरसत के क्षण मिले तो आप के चरणों में दो शब्द लिख रहा हूँ। वैसे आप की स्मृति तो कभी विस्मृति नहीं बनती। आपका पत्र संस्मृति को और तेज कर देता है। तत्काल ही उत्तर लिखने के लिए हृदय तत्पर हो जाता है। किन्तु कार्य की सिद्धि में जहाँ स्वभाव, पुरुषार्थ, नियति तथा भाग्य अपेक्षित है वहाँ काल की भी नितान्त आवश्यकता है। समय की अनुकूलता के बिना शेष समवाय भी व्यर्थ हो जाते हैं। समय की प्रतिकूलता

प्रत्येक कार्य में बाधा डालती है। किन्तु फिर भी बिलम्ब के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। बड़े महाराज श्री जी आपको बहुत याद करते रहते हैं। आपकी दूरी उन्हें खटकती रहती है। भावावेश में कई बार कह देते हैं कि 'जाने मनोहर से जीवन में मिलना होगा या नहीं।' आपकी स्मृति उनके हृदय को कभी छोड़ती नहीं। आप इतने निष्ठुर कि दूर जाकर सबको ही भूल गये, इधर का भी कुछ ख्याल करें।

आपकी यात्रा निर्विघ्न चल रही होगी। आपके चरणों में रहकर मैं उधर की यात्रा का आनन्द तो नहीं उठा सका। क्योंकि इधर भी तो कर्त्तव्य ने बाँध रखा है। कर्त्तव्य की सीमा में रहना भी एक कर्त्तव्य ही है। किन्तु मन यह अवश्य चाहता है कि आपकी यात्रा के अनुभूति लोक में हम इधर बैठे-बैठे ही विचरण करलें। आपकी प्रथम 'पगों के सहारे' पुस्तक मन को काफी अच्छी लगी। इसीलिए मैंने आपको एक प्रेरणात्मक पत्र दिया। आपने मेरे पत्र को स्नेह प्रदान किया और मेरी उत्कण्ठा तथा आकांक्षा को स्वीकृति से विभूषित किया है। इसके लिए मैं आभारी हूँ। सच, बहुत ही आभारी हूँ।

आप श्री जी ने चातुर्मास के बारे में पूछा है सो अर्ज है कि चातुर्मास के लिए कई क्षेत्रों का आग्रह चल रहा है किन्तु महाराज श्री जी के स्वास्थ्य को देखते हुए जालन्धर ही

वर्षावास विताने का विचार हो रहा है। आप जानते ही हैं कि वड़े महाराज श्री जी का स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक नहीं रहता। शरीर में कोई न कोई रोग चलता ही रहता है। कमजोर भी बहुत हो गये हैं। भूख तो मानों उनको छोड़ ही गई है। पेय पदार्थ पर शरीर चल रहा है। उपचार तो चलता ही रहता है किन्तु फिर भी निरोगता शरीर के निकट फटकती नहीं। दवाइयें आखिर शरीर को कबतक टिकाए रख सकती हैं। अब तो औषधि से भी घृणा होती जा रही है। श्रावकों के आग्रह से फिर भी थोड़ी बहुत दवा हलक से नीचे उतारनी ही पड़ती है। आपको शायद मालूम ही होगा कि पहले एकबार जोरदार दिल का दौरा पड़ गया था। कई महीने चारपाई पर ही रहना पड़ा। गैस्ट्रिक रोग तो चिर समय से शरीर से संधि करके पड़ा है। महाराज श्री जी का मनोबल ही है जो इतनी तकलीफ होने पर भी कुछ गिनते ही नहीं। शरीर का धर्म फिर भी शरीर के साथ ही रहता है। मेरे से जितनी सेवा बन सकती है करता हूँ। अन्य सन्त भी जी जान सेवा में जुटे रहते हैं। आपकी सद्भावनाओं का पत्र मिलता रहता है। महाराज श्री जी आप पर अत्यन्त प्रसन्न हैं और आपको अपना शुभ आशीर्वाद भेजते हैं। काफी देर से अस्वस्थ होने के कारण महाराज श्री जी यहाँ विराज रहे हैं। ऐसी स्थिती में संघ विहार भी कहाँ करने देता है? चातुर्मास तो यहाँ होगा ही।

जालन्धर का पता तो आप जानते ही हैं। किन्तु फिर भी लिख देता हूँ :—

श्री भद्र मुनिजी
C/o जैन स्थानक
बाँस बाजार, जालन्धर, (पंजाब)

आपका पत्र मुझे सुरक्षित मिलेगा। खण्डगिरि से आप किस ओर पधारेंगे। अवश्य सूचित करें। चातुर्मास में अभी लगभग दो मास पड़े हैं। इतना समय कहाँ गुजारना होगा। सुनते हैं कि उधर उड़ीसा में क्षेत्रों का अभाव ही है। वैसे तो सन्त "अयं निजः परोवेति" की संकुचित भावना से ऊपर ही रहते हैं। जहाँ भी वे चले जाते हैं वहीं मंगल हो जाता है। किन्तु फिर भी क्षेत्रों का साधक के संयमी जीवन में एक विशिष्ट स्थान तो रहता ही है।

आपके दर्शनों की लालसा हृदय में सदा रहती है किन्तु धरती के इतने लम्बे फासले पार किये बिना मेरे दो भद्र नयन दो मनोहर नेत्रों का साक्षात नहीं कर सकते। फिर भी हृदय की उत्कण्ठा को सुप्त होने नहीं देता मैं : संकल्प का बीज कभी न कभी तो अंकुर बनकर निकलता ही है। अधिक क्या लिखूँ। आप सदैव सुखसाता के क्षणों में रहें। आपकी कीर्ति दिगन्त व्यापिनी हो। यही शासनेश से प्रार्थना है।

श्रीराम मुनिजी महाराज तथा सतीश मुनिजी की ओर से सुख साता स्वीकार करें। श्री विजय मुनिजी को सस्नेह सुखसाता पूछें। योग्य सेवा से अनुगृहीत करें। पुनः पुनः वन्दना तथा श्रद्धेय महाराज की तरफ से स्नेह भरा आशीर्वाद।

आपका

मुनि भद्र

एक

स्नेहाभिषिक्त

तथा

श्रद्धास्पद

उत्तर

इसपार

से

पत्र !

भुवनेश्वर
(उड़ीसा)
२८-६-७१

प्रिय भद्र मुनिजी

सस्नेह सुखसाता।

हमें भुवनेश्वर आए अभी दो ही दिन हुए हैं। लालचन्दजी ने आपका पत्र अभी-अभी लाकर दिया है। आपके पत्र का मृदुल संस्पर्श पाकर हृदय एकदम पुलकित हो उठा है। आपका लिफाफा क्या है मेरे लिए श्रद्धेय महाराज श्री जी की आशीर्वाद तथा स्नेह की एक मंजूषा ही है। आपके पत्र के प्रति अक्षर में स्नेह, प्रेम, उत्साह तथा शुभेच्छा का पावन अमृत छलकता हुआ प्रतीत होता है। मैं आपके इस सौहार्द के लिए आभारी हूँ। आपने लिखा है कि महाराज श्री जी को मेरा सदैव ध्यान रहता है। यह तो मेरा अहोभाग्य ही है कि मुझ नाचीज़ पर उनकी इतनी दयालुता बरसती है। इसके लिए मैं हार्दिक धन्यवादी हूँ। आपने देर से पत्र लिखने के कुछ कारण लिखे हैं और कुछ स्पष्टीकरण भी दिये हैं किन्तु युक्ति तथा स्पष्टीकरण तो दार्शनिक के लिए होते हैं। प्रेम के लिए नहीं। प्रेम कभी दार्शनिक नहीं होता। वह कभी स्पष्टीकरण नहीं मांगता। वह तो केवल प्रेम और स्नेह ही मांगता है। उसकी प्यास प्रेम है

और उसकी भूख भी प्रेम है । प्रेम तार्किक नहीं होता। वह पागल होता है।

चकोर ने चान्द को देखा । उसे मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठा। किन्तु इतनी दूर कैसे पहुँच सकूँगा । इतने में दूर अंगारों का ढेर दिखाई दिया। और वह चकोर उस आग में जा गिरा। किसी दार्शनिक ने उसे जलते देखा तो कहा "अरे पगले! क्यों जलते हो? क्यों जान खोते हो ? जलकर राख हो जाओगे इस आग में।" 'राख बनने के लिए तो जलता ही हूँ' चकोर ने कहा । 'क्यों राख बनाते हो अपनी?' दार्शनिक ने पूछा। 'मुझे चान्द से मिलना है' चकोर बोला। 'ऐसे कैसे मिलोगे चान्द से?' तार्किक ने उत्तर मांगा । मेरे तन की इस भस्म को शिव अपने अंगों को लगा लेंगे । वहाँ उनके मस्तक पर चान्द तो रहता ही है। बस मैं उससे जा मिलूँगा। उस चकोर ने समाधान दिया।

इसीलिए तो मैंने लिखा है कि सच्चा प्रेम सचमुच ही पागल होता है। दार्शनिक कभी प्रेम के निकट नहीं पहुँच सकता। और प्रेम दार्शनिक शैली को समझ नहीं सकता। तार्किक उस परमतत्व को समझ सकता है और समझा भी सकता है किन्तु पा नहीं सकता है। प्रेम भले ही समझे नहीं किन्तु वह विश्वासी होता है। और अपने आत्मविश्वास से उसे पा लेता है। दार्शनिक लेखनी तो मेरे भी पास है किन्तु

पत्र में मैं उसका कम ही प्रयोग करता हूँ । श्रद्धा तथा प्रेम की लेखनी ही प्रेमात्मक पत्र का सृजन कर सकती है और वह ही पत्र किसी दूरस्थ हृदय को शान्ति दे सकता है । चलो खैर आपका पत्र किसी तरह मिला तो सही । मैंने आज ही आपकी उत्कण्ठा के गले में गलहार डालने के लिए पुस्तक के पन्नों का पुष्पहार गूँथना आरम्भ किया है । इस समय सुबह के छः बजे हैं । एक आम्र वृक्ष की छाँह तले बैठा हूँ अपनी लेखनी लिए हुए । प्राची के आँचल से प्रभात के माथे पर सिन्दूर-तिलक सा सूर्य उग रहा है । एक ओर बादलों का दल उसे अपनी अंक में छिपा लेने के लिए तैयार हो रहा है । सूर्य तथा मेघ का यह द्वन्द्व युद्ध आज सवेरे-सवेरे ही नील प्राङ्गण में आरम्भ हो गया है । वातावरण की नीरवता कुछ-कुछ श्वास लेने लगी है । बाग में चारों ओर मोहकता छा रही है । कलियाँ चटक रही हैं । फूल मुस्कारा रहे हैं । वृक्षोंकी टहनियाँ झुक-झुक कर प्रणाम कर रही हैं । शीतल पवन के झोंके अंगों को पुलकित कर रहे हैं । सामने कुंए पर बहन व भाई पानी भरने के लिए जमा हो रहे हैं । पंछियों के कलरवों में मुझे श्रद्धेय महाराज जी के आशीर्वाद के शब्द सुनाई दे रहे हैं । इसलिए शायद मेरे हृदयाकर्षण का हेतु बन गये हैं ये खग-गान । इस तरह मेरे मन की समाधि तथा बाह्य मोहकता के बीच भी एक संघर्ष छिड़ रहा है । वातावरण की मोहकता का प्रयास यह है कि मैं लेखनी को छोड़कर पौद्गलिक जगत के अनन्त सागर की अनन्त कलोलों

को देखता रहूँ। और देखता-देखता इसमें खो जाऊँ। किन्तु ऐसे भला कैसे हो सकता है। विवेक आत्म-जाग्रती तथा कर्त्तव्य-निष्ठा कभी भी अपने लक्ष्य को भूल नहीं सकती। अपने ही स्वरूप में खोये हुए मानव के लिए बाहर क्या आकर्षण रह सकता है भला ? क्या आगमों में नहीं कहा ?

सव्वं विलवियं गीयं,
सव्वं नट्टं विडम्बियं।
सव्वे आहरणा भारा,
सव्वे कामा दुहावहा॥

एक आत्म ज्ञानी के लिए सब गीत विलाप रूप हैं। सब प्रकृति के नाटक विडम्बना मात्र हैं। सब सुन्दर आभूषण भार रूप हैं और सब काम-वासनाएँ दुःखदायक ही हैं। बाह्य सुखसे अनन्त गुण अधिक आनन्द अपने मन की एकाग्रता में है। जो उसका आस्वादन कर रहा हो उसे बाहर झाँकने की क्या आवश्यकता है। कुछ नहीं। मैं बाहर को अन्तरङ्ग से पृथक नहीं देखता। मुझे आकाश की अनन्ता में हृदय की निस्सीमता मालूम होती है। विनीतता उपकारिता तथा सहिष्णुता वृक्षों की डालियों पर झूमती हुई दिखाई देती है। कलियों में भावों की उज्ज्वलता तथा जीवन का विकास प्रतीत

होता है। फूलों का उन्मुक्त सौरभ दान हृदय के औदर्य का ही प्रतीक है। पंछियों के प्रभात कालीन कलरवों में प्रातः ईश्वर स्तुति करने का एक नियम ज्ञात होता है। वादल तथा दिवाकर का द्वन्द्व मुझे कर्म तथा आत्मा या प्रकृति और पुरुष का ही एक द्वन्द्व नजर आता है। सूर्य तथा समीर के हृदय में साक्षात निष्पक्षता झलकती है। गरीब और अमीर के लिए इनके मन में किञ्चित भी भेद-भाव नहीं। मेरे सामने एक आम्रवृक्ष के ऊँचे शिखर पर कोयल वैठी है। निरन्तर कुहु कुहु करती जा रही है। उसके हृदय को मैं नहीं जानता कि वह वास्तव में क्या कहती है। किन्तु जव मैं उसे अपनी भावना के दर्पण में देखता हूँ तो मुझे ऐसा लगता है कि वह मुझे आपके लिए विहार-यात्रा के पृष्ठ लिखते हुए देखकर यह कह रही है कि मेरी ओर से भी श्रद्धेय रघुवर दयालजी महाराज के चरण सरोजों में सादर वन्दना लिख देना और सुख साता पूछना। संसार का नियम भी कुछ ऐसा है कि—

We see things not as they are but as we are.

संसारमें वस्तुएं जैसी होती हैं वैसी नजर नहीं आती वल्कि जैसे हम स्वयं होते हैं वैसे पदार्थ झलका करते हैं।

इसलिये कोयल मेरे मानस का विश्लेपण ही कर रही है। कुछ ऐसा मालूम होता है। किसी महान आत्मा के चरणों

में अपनी श्रद्धा की एक मधुर अभिव्यक्ति कर रही है वह। मेरे कानों को उसकी कुहु कुहु में एक मात्र यही सुनाई देता है।

मैंने उस कोयल से कहा है कि "अरी! तू मेरी तरह क्यों विह्वल हो रही है। विधाता ने तुम्हें तो पंख दिये हैं। तू तो उड़कर वहाँ पहुँच सकती है। उनके दर्शन करके और सुख शान्ति का समाचार लेकर फिर वापिस भी आ सकती है। तू मेरी तरह बेवस व लाचार तो नहीं है? जा उड़ जा और उस दिव्यात्मा के पास मेरा यह संदेश भी ले जा। किन्तु वह तो मेरी एक बात नहीं सुनती और न कुछ समझती है। बस बोलती चली जा रही है। वह वृक्ष के ऊपर बैठी है और मैं वृक्ष के नीचे। वह गाने में व्यस्त है और मेरी लेखनी काली मसी से पत्राक्षर बनाने में। अपनी विहार-यात्रा के कतिपय पृष्ठ लिखने में व्यस्त है। संलग्न है। आपने प्रथम 'पगों के सहारे' पुस्तक तो पढ़ी ही है। उसमें कलकत्ता चातुर्मास तथा उसके उपरान्त भवानीपुर कल्पवास तक का कुछ विवरण दिया है। भवानीपुर हम एक मास ठहरे। वहाँ एक 'आध्यात्मिक शिवर' का आयोजन किया गया। जिसमें ४५ बालकों ने भाग लिया। यह त्रिदिवसीय कार्यक्रम अद्वितीय रूप से सम्पन्न हुआ। और हम कामानी जैन भवन से विहार करके २७ पोलोक स्ट्रीट में वापिस लौटे। यह तो आप जानते ही हैं कि 'पगों के सहारे' पुस्तक भवानीपुर में कामानी जैन भवन में लिखी गई। पोलोक स्ट्रीट स्थानक

में लौटकर इसे छपने के लिए प्रेस में दिया गया। हमारा ख्याल था कि यह १५-२० दिन में छपकर तैयार हो जायेगी। किन्तु इसमें पूरे दो महीने ही लग गये। हमें इस काम के लिए कलकत्ता रुकना पड़ा। भवानीपुर श्री संघ ने १९७१ के चातुर्मास के लिए पुरजोर विनती की। और आग्रह भरे शब्दों में कहा कि आप एक चातुर्मास कलकत्ता और कर जाइये। इतनी दूर सन्तों का आना बार-बोर कहाँ होता है। बड़ी कठिनाई से मुनिराज इधर आ पाते हैं। यदि एक चातुर्मास का लाभ और मिले तो कलकत्ता श्री संघ को अत्यन्त प्रसन्नता होगी, हर्ष होगा।" भवानीपुर संघ की भाव भरी विनती को देखकर एक बार तो हमारे मन में भावना बन गई थी कि चलो एक चातुर्मास और कर लिया जाये किन्तु कुछ कारणों को सोचकर मन दूसरी ओर भी मुड़ जाता था

कलकत्ता में साधुओं के लिए गुजराती समाज के पास ही स्थान है। एक पोलोक स्ट्रीट और दूसरा कामानी जैन भवन, भवनीपुर। एक चातुर्मास के उपरान्त तथा दूसरे चातुर्मास से पहले आठ महीनों का लम्बा समय साधु कलकत्ता में रहकर नहीं गुजार सकता। आस-पास भी कोई ऐसे क्षेत्र नहीं हैं जहाँ साधु अपनी मर्यादा के अनुसार रहकर टाइम पास कर सके। दूसरे चातुर्मास में अनुकूल क्षेत्रों का अभाव एक बहुत बड़ी बाधा है।

उन दिनों बंगाल की राजनीति में बड़े-बड़े तूफान आ रहे थे और कलकत्ता की स्थिति दिन प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही थी। ऐसी स्थिति में हमनें कलकत्ता अधिक ठहरना और दूसरा चातुर्मास करना उचित नहीं समझा। हमने ८ मार्च १९७० को रविवार के दिन कलकता से खड़गपुर की तरफ विहार कर दिया। आप कलकत्ता और उसके आगे विहार की झाँकिएं अगले पत्र में पढ़ेंगे। अब टाइम बहुत हो गया है। सुबह के नौ बजे हैं। कुछ आवश्यक पाठ-जाप भी करना है। कुछ-कुछ भूख भी तेज हो रही है। सुबह का कुछ खाया पिया भी तो नहीं है। रात्रिका चौविहार और फिर गरमी का मौसम। प्यास भी खूब गले तक पहुँच गई है। अब अधिक देर तो नहीं लिख सकूँगा। क्योंकि—

भूखे पेट न होत लिखाई,
ले ले अपनी कलम-स्याई।

क्या यह ठीक नहीं? आप तो मेरे से अवश्य सहमत रहेंगे इस सिलसिले में। खैर ये दो शब्द उपहास के हुए। यह पत्र आज ही पोस्ट करवा दूँगा। दूसरा पत्र समय मिला तो आज किसी समय लिखूँगा, नहीं तो फिर कल तो अवश्य ही।

आपका

मुनि मनोहर 'कुमुद'

आस्माँ मबहूत था,

तपती ज़मीं ख़ामोश थी।

एक वीरां रास्ते पर

जा रहा था एक जवाँ॥

मैंने पूछा—"ऐ मुसाफ़िर!

किस तरफ़ जायेगा तू?"

काँपती आवाज़ में बोला—

"मेरी मंजिल कहाँ?"

—नदीम क़ासिमी

★★

मेरी जिन्दगी इक मुसलसल सफर है,
जो मंज़िल पै पहुँचा तो मंज़िल बढ़ा दी ।

—दिल

सफर करते हुए मंज़िल ब मंज़िल जा रहे हैं हम,
मुझे यह सारी दुनिया कारवाँ मालूम होती है ।

—ज़िगर

अपने क़दम के साथ है मंज़िल लगी हुई,
मंज़िल पे जो नहीं वोह हमारा क़दम नहीं ।

—निहाल

★

न जाने कहाँ से न जाने किधर से,
बस इक अपनी धुन में उड़ा जा रहा हूँ।

—अहसान दानिश

★

निगाहों में मंजिल मेरी फिर रही है,
यूँ ही गिरता पड़ता चला जा रहा हूँ।

—अहसान दानिश

★

न इद्राके हस्ती न एहसासे मस्ती,
जिधर चल पड़ा हूँ चला जा रहा हूँ।

—अहसान दानिश

★★

कलकत्ता से खड़गपुर

पत्र !

(६)

भुवनेश्व
२६-६-७१

प्रिय श्री भद्र मुनिजी

सस्नेह सुखसाता।

कल सुबह आपको एक पत्र दिया था। उसके बाद
लिखने का फिर कल तो समय मिला ही नहीं। कल दिन
लोगों का आना-जाना रहा। आज कुछ फुरसत के क्षणों में हूं
दोपहर के दो बजे हैं। आँखों में कुछ आलस्य भी छाने व
प्रयास कर रहा है। किन्तु 'आराम है हराम' के स्वर मुझे
सजग करते जा रहे हैं और पलकों को आगोश से सुस्ती को
दूर भगा रहे हैं।

वातावरण के हृदय पर नीरवता का इस समय अखण्ड
शासन चल रहा है। नील-नभ बिल्कुल मेघ मुक्त है आज।
सूर्य अपने तेजस्वी नेत्रों से धरती को अपलक देख रहा है।
धरती के वक्षस्थल से मानों उसका मनःसन्ताप ही बाहर
निकल रहा है। धरातल की प्रत्येक वस्तु उसकी ऊष्मा से उष्ण
हो रही है। पंछियों ने अपने नीड़ों में समाधि ले ली है।
पवन ने अपना विहार भी बन्द कर दिया है। जिससे
धरती की विकलता और बढ़ गई है। सड़क पर मोटरों, बसों,
कारों तथा रिक्शाओं आदि का आवागमन भी बन्द हो गया

है। सब अपने–अपने विश्रामगृहों में विश्राम के लिए चले गये हैं। वैसे भी भुवनेश्वर १ से ४ बजे तक सुनसान हो जाता है। ३ घण्टे के लिए बाजार प्रायः बन्द हो जाते हैं। कोई विशेष कारोबार नहीं होता। और फिर गरमी के मौसम में तो और भी ज्यादा शहर में सन्नाटा छा जाता है। प्रकृति के मौन प्राङ्गण में मैं आपके लिए कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस बगीचे के पीछे बिल्कुल करीब रेलवे स्टेशन है। कभी-कभी गाड़ियों का चीत्कार जरुर कानों को दुःखित करता है। किन्तु मेरी लेखनी की एकाग्रता में कोई व्यवधान नहीं।

मैंने आपको प्रथम पत्र में लिखा था कि हमने आठ मार्च १९७० को कलकत्ता से खड़गपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में कहाँ-कहाँ रुकना व ठहरना हो सकता है उसके लिए एक 'मार्ग निर्देशिका' दे रहा हूँ। ताकि प्रत्येक इधर के राही को सुबिधा रहे। विहार में सब से बड़ा प्रश्न स्थान का तथा आहार-पानी का होता है। इन दो बातों पर साधु को पुरी तरह सोच-विचार कर चलना चाहिये। वैसे तो साधु का जीवन परिषजय प्रधान होता है। कदम-कदम पर उसके जीवन में परीसह आते हैं। वे उन्हें पार करके ही आगे बढ़ सकता है। किन्तु अविवेक से अज्ञान कष्ट उठाना कोई बुद्धिमत्ता तथा महानता की बात नहीं है। सोच समझकर उठाया हुआ कदम सफल होता है और बिना विचारे किया हुआ काम विफल होता है। कुछ लोग कहते हैं "कि मनुष्य

भुवनेश्वर
२६-६-७१

प्रिय श्री भद्र मुनिजी

सस्नेह सुखसाता ।

कल सुबह आपको एक पत्र दिया था। उसके बाद कुछ लिखने का फिर कल तो समय मिला ही नहीं । कल दिनभर लोगों का आना-जाना रहा। आज कुछ फुरसत के क्षणों में हूँ। दोपहर के दो बजे हैं। आँखों में कुछ आलस्य भी छाने का प्रयास कर रहा है। किन्तु 'आराम है हराम' के स्वर मुझे सजग करते जा रहे हैं और पलकों को आग़ोश से सुस्ती को दूर भगा रहे हैं।

वातावरण के हृदय पर नीरवता का इस समय अखण्ड शासन चल रहा है। नील-नभ बिल्कुल मेघ मुक्त है आज। सूर्य अपने तेजस्वी नेत्रों से धरती को अपलक देख रहा है। धरती के वक्षस्थल से मानों उसका मनःसन्ताप ही बाहर निकल रहा है। धरातल की प्रत्येक वस्तु उसकी ऊष्मा से उष्ण हो रही है। पंछियों ने अपने नीड़ों में समाधि ले ली है। पवन ने अपना विहार भी बन्द कर दिया है। जिससे धरती की विकलता और बढ़ गई है। सड़क पर मोटरों, बसों, कारों तथा रिक्शाओं आदि का आवागमन भी बन्द हो गया

है। सब अपने–अपने विश्रामगृहों में विश्राम के लिए चले गये हैं। वैसे भी भुवनेश्वर १ से ४ बजे तक सुनसान हो जाता है। ३ घण्टे के लिए बाजार प्रायः बन्द हो जाते हैं। कोई विशेष कारोबार नहीं होता। और फिर गरमी के मौसम में तो और भी ज्यादा शहर में सन्नाटा छा जाता है। प्रकृति के मौन प्राङ्गण में मैं आपके लिए कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस बगींचे के पीछे विल्कुल करीब रेलवे स्टेशन है। कभी-कभी गाड़ियों का चीत्कार जरुर कानों को दुःखित करता है। किन्तु मेरी लेखनी की एकाग्रता में कोई व्यवधान नहीं।

मैंने आपको प्रथम पत्र में लिखा था कि हमने आठ मार्च १६७० को कलकत्ता से खड़गपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में कहाँ-कहाँ रुकना व ठहरना हो सकता है उसके लिए एक 'मार्ग निर्देशिका' दे रहा हूँ। ताकि प्रत्येक इधर के राही को सुविधा रहे। विहार में सब से बड़ा प्रश्न स्थान का तथा आहार-पानी का होता है। इन दो बातों पर साधु को पुरी तरह सोच-विचार कर चलना चाहिये। वैसे तो साधु का जीवन परिषजय प्रधान होता है। कदम-कदम पर उसके जीवन में परीसह आते हैं। वे उन्हें पार करके ही आगे वढ़ सकता है। किन्तु अविवेक से अज्ञान कष्ट उठाना कोई बुद्धिमत्ता तथा महानता की वात नहीं है। सोच समझकर उठाया हुआ कदम सफल होता है और विना विचारे किया हुआ काम विफल होता है। कुछ लोग कहते हैं "कि मनुष्य यदि आत्म-

भुवनेश्वर
२६-६-७१

प्रिय श्री भद्र मुनिजी

सस्नेह सुखसाता।

कल सुबह आपको एक पत्र दिया था। उसके बाद कुछ लिखने का फिर कल तो समय मिला ही नहीं। कल दिनभर लोगों का आना-जाना रहा। आज कुछ फुरसत के क्षणों में हूँ। दोपहर के दो बजे हैं। आँखों में कुछ आलस्य भी छाने का प्रयास कर रहा है। किन्तु 'आराम है हराम' के स्वर मुझे सजग करते जा रहे हैं और पलकों को आगोश से सुस्ती को दूर भगा रहे हैं।

वातावरण के हृदय पर नीरवता का इस समय अखण्ड शासन चल रहा है। नील-नभ बिल्कुल मेघ मुक्त है आज। सूर्य अपने तेजस्वी नेत्रों से धरती को अपलक देख रहा है। धरती के वक्षस्थल से मानों उसका मनःसन्ताप ही बाहर निकल रहा है। धरातल की प्रत्येक वस्तु उसकी ऊष्मा से उष्ण हो रही है। पंछियों ने अपने नीड़ों में समाधि ले ली है। पवन ने अपना विहार भी बन्द कर दिया है। जिससे धरती की विकलता और बढ़ गई है। सड़क पर मोटरों, बसों, कारों तथा रिक्शाओं आदि का आवागमन भी बन्द हो गया

है। सब अपने–अपने विश्रामगृहों में विश्राम के लिए चले गये हैं। वैसे भी भुवनेश्वर १ से ४ बजे तक सुनसान हो जाता है। ३ घण्टे के लिए बाजार प्रायः बन्द हो जाते हैं। कोई विशेष कारोबार नहीं होता। और फिर गरमी के मौसम में तो और भी ज्यादा शहर में सन्नाटा छा जाता है। प्रकृति के मौन प्राङ्गण में मैं आपके लिए कुछ लिखने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इस बगींचे के पीछे विल्कुल करीब रेलवे स्टेशन है। कभी-कभी गाड़ियों का चीत्कार जरुर कानों को दुःखित करता है। किन्तु मेरी लेखनी की एकाग्रता में कोई व्यवधान नहीं।

मैंने आपको प्रथम पत्र में लिखा था कि हमने आठ मार्च १९७० को कलकत्ता से खड़गपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में कहाँ-कहाँ रुकना व ठहरना हो सकता है उसके लिए एक 'मार्ग निर्देशिका' दे रहा हूँ। ताकि प्रत्येक इधर के राही को सुविधा रहे। विहार में सब से बड़ा प्रश्न स्थान का तथा आहार-पानी का होता है। इन दो बातों पर साधु को पुरी तरह सोच-विचार कर चलना चाहिये। वैसे तो साधु का जीवन परिषजय प्रधान होता है। कदम-कदम पर उसके जीवन में परीसह आते हैं। वे उन्हें पार करके ही आगे वढ़ सकता है। किन्तु अविवेक से अज्ञान कष्ट उठाना कोई बुद्धिमत्ता तथा महानता की वात नहीं है। सोच समझकर उठाया हुआ कदम सफल होता है और विना बिचारे किया हुआ काम विफल होता है। कुछ लोग कहते हैं "कि मनुष्य यदि आत्म-

विश्वास से चलता जाये तो अनुकूल साधन अपने आप मिल जाते हैं। उसके लिए चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। किन्तु मैं ऐसे आत्म विश्वासी विज्ञ पुरुषों से निवेदन करूँगा कि आत्म-विश्वास का मतलब विवेकपूर्ण विश्वास से है कोई अन्ध-विश्वास से नहीं। जैन धर्म अन्ध विश्वास का अनुयायी नहीं है। उसने ज्ञान, दर्शन तथा चरित्र के साथ 'सम्यक्' शब्द जोड़ा है तो उसका अभिप्राय यही है कि ज्ञान, विश्वास तथा आचरण मिथ्या, असम्यक् या गलत नही होना चाहिये। यथार्थ होना चाहिये, बिल्कुल ठीक होना चाहिये। तभी कार्य की सिद्धि होती है। सफलता के बाद जीवन में शान्ति आती है। आनन्द मिलता है। प्रत्येक कार्य को विवेकशीलता के आलोक में करने से परेशानी नहीं होती। दुःख, कष्ट तथा विपत्ति नहीं आती। किन्तु यदि किसी पूर्व जन्म के पापोदय से जीवन में बाधाएं व असफलताएं मिलें भी तो फिर प्रत्येक साधक को आत्म-विश्वास से काम लेना चाहिये। उसे समभाव, शान्ति, धीरज तथा मनोबल से उसे सहन करना चाहिये। और समझना चाहिये कि ये विधि के अमिट लेख हैं। जिन्हें टाला नहीं जा सकता। सहिष्णुता तथा अक्षय साहस ही जीवन के सबसे बड़े सम्बल होते हैं। अनुकूलता के लिए प्रयत्न करने पर भी यदि प्रतिकूलताएं ही पल्ले पड़ें तो फिर उसी में आनन्द मानने और क्षुब्ध नहीं होने में ही वास्तव में साधु के आत्म-विश्वास का परिचय मिलता है। जीवन-यात्रा में यह प्रत्येक

व्यक्ति का सबसे बड़ा साथी है। किन्तु फिर भी आगे-पीछे का कुछ ख्याल तो कर ही लेना चाहिये। इस लक्ष्य से, नीचे एक कलकत्ता से खड़गपुर तक की तालिका दे रहा हूँ। जरा इस पर दृष्टि-निक्षेप कर लीजिए। यह विहार २७ पोलोक स्ट्रीट जैन स्थानक से हो रहा है :—

नगर व ग्राम	मील	स्थान
(१) हवड़ा—१	३	जैनयुवक समिति का मकान न०-२
(२) आन्दूल	१२	दयाराम पोद्दार का बगीचा
(३) पाँचला मोड़	६	सूरज हालदर आश्रम
(४) काश्यपपुर	११	चैतन्य महाप्रभु का मन्दिर
(५) कोलाघाट	१०	दि० जैन धर्मशाला
(६) पाँचकूड़ा	११	एक हाई स्कूल
(७) हरिनाग्राम	१५	एक प्राइमरी स्कूल
(८) लक्ष्मापुर	८	डाक बंगला
(९) खड़गपुर	६	जैन स्थानक

यह ८५ मील का रास्ता है कलकत्ता से खड़गपुर तक का, जो कदमों से छू-छू कर चलना होता है साधु को। किन्तु सड़क बिल्कुल साफ। कहीं से टूटा-फूटा नहीं। पैरों को काटने वाला मार्ग नहीं है।

कलकत्ता पोलोक स्ट्रीट से हमने सुबह ९ बजे के लगभग अपने कदम उपाश्रय से बाहर रखे। सारा स्थानक ऊपर से नीचे

तक श्रद्धामय हृदयों से भरा हुआ था उस समय । लगभग ८ मास हमने कलकत्ता के प्राङ्गण में व्यतीत किये। और वे भी प्रेम, स्नेह, श्रद्धा तथा मधुरता के क्षणों में। इसलिए विदाई के समय ऐसे अनुपम दृश्य का उपस्थित हो जाना स्वाभाविक है। साधु तो मोक्ष-मार्ग का पथिक होता है। त्याग और वैराग्य की पाँखों से एक वृक्ष से उड़ना और किसी दूसरे वृक्ष पर जाकर बैठ जाना। उसके जीवन का आजीवन यही क्रम रहता है। एक घर एक स्थान उसका नहीं होता । कुछ भी उसका अपना नहीं होता। फिर विछोह उसे किसका होगा ? उसे क्या चीज दुःख देगी ? वास्तव में आसक्ति का नाम ही दुःख है। किन्तु यदि साधक सर्वत्र विरक्त होकर ही रहता है तो फिर आसक्ति उसे अपने बाहुपाश में कदापि बाँध नहीं सकती। फिर उसकी आँखों में विरह के आँसू क्यों आएंगे भला ? किन्तु प्रेम, श्रद्धा तथा करुणा के झरणे उसकी पलकों से अवश्य वह सकते हैं। क्योंकि यह तो एक सहृदय के जीवन को वास्तव में सम्पदा ही है। भले ही वीतरागता के शिखर पर पहुँच कर ये सब सूख जाएं । साधु की पलकों में मोह का पानी प्रायः नहीं आना चाहिये। हम तो सूखी पलकों से चले जा रहे थे। किन्तु हम अपने पीछे श्रद्धा तथा प्रेमाश्रुओं को एक बरसात देख रहे थे। आनन्दमय सान्निध्य में स्नेह पनपता है और वियोग के क्षणों में स्नेह पिघलकर पानी बन जाता है और पलकों का बन्ध तोड़कर बहने लगता है। सच स्वयं गौतम

भी ऐसे आँसुओं को नहीं रोक सके। तो फिर देव, गुरु तथा धर्म श्रद्धा से भरे हुए साधारण श्रावकों के नेत्र कैसे रुक सकते हैं भला। हजारों बहन व भाई बोझिल हृदय से हमें विदाई देने के लिए चल पड़े। जूलूस ब्रेबन तथा हरीसन रोड से होता हुआ और अनेक छोटे-मोटे मार्गों को पास करता हुआ हवड़ा पुल पर पहुँचा। कलकत्ता में प्रतिदिन कोई न कोई राजनैतिक जुलूस किसी न किसी प्रसंग पर निकलता ही रहता है। विहार का जब यह आध्यात्मिक जुलूस भी गुजर रहा था तो लोग अपने गगन-चुम्बी भवनों की झट से खिड़किएं खोलकर बड़ी उत्सुकता से झाँकने लगते कि देखें किस पार्टी का यह प्रोसेशन जा रहा है। किन्तु जब उनके कानों को अहिंसा धर्म की जय और भगवान महावीर स्वामी की जय के आध्यात्मिक नारे सुनाई देते तो वे एकदम मौन और गम्भीर होकर देखने लगते। यह तो भगवान महावीर की शान्ति सेना है "यह अन्य कोई पार्टी नहीं यह तो केवल अहिंसा पार्टी ही है। जो समस्त विश्व को शान्ति का ही सन्देश देते फिर रहे हैं।" यह समझ लेने पर भला किसी की आँखों में शरारत व चांचल्य कैसे रह सकता है ? मनुष्य की भावना, आकृति तथा शब्द का अपना अलग-अलग ही प्रभाव होता है। सच जनता के पावन-जय नादों से कलकत्ता के बाजारों में महावीर की आध्यात्मिकता के परमाणु बिखरने लगे थे। हवड़ा पुल का वातावरण तो वैसे ही बड़ा चित्ताकर्षक रहता है। हजारों लोगों के एक साथ पहुँच

जाने से ऐसा लगता है कि हुगली के जलीय वक्षस्थल पर एक और जनता की हुगली बह रही हो। मनोहारी दृश्य और अधिक मनोहारी हो गया। हुगली का पानी हर्षोत्कर्ष में वल्लियों उछलने लगा महावीर के नाम की पवित्र ध्वनिएं सुनकर। सच, प्रिय तथा परिचित की आवाज सुनकर किसको हर्ष नहीं होता ? विहार, बंगाल तथा उड़ीसा की ऐसी कौन सी नदी है जिसके किनारे महावीर के पद्मासनों से पवित्र न हो चुके हों। और उनके निर्मल-नीर महावीर के आध्यात्मिक जीवन को छाया से परिपूत न हुए हों।

हवड़ा पुल पर आते ही हृदय हुगलो के पानी की तरह ही उछलने लगता है आनन्द से। जल में चलती हुई डोंगियों को देखकर सच,

भावनायोग सुद्धप्पा जले नावा ज आहिया
नावा ज तोर संपण्णा सव्व दुक्खा तिउट्टइ-

की यह सूत्र कृतांग की सार भरी गाथा बरबस मनोभूमि पर घूमने लगती है। जो नौका जब तक किनारे से दूर रहती है तबतक उसे डूबने का किसी भी समय खतरा हो सकता है किन्तु किनारे पर पहुँच कर भँवर चट्टान तथा तूफान का कोई भय नहीं रहता। सच मानव जीवन भी एक नौका है। संसार सागर में यह पाप कर्मों के भँवर में फंसकर मोह के

तूफान में घिरकर तथा अज्ञान की चट्टान से टकरा कर किसी समय भी डूब सकती है। भावना योग से शुद्ध हुई आत्मा की नौका मोक्ष के किनारों पर पहुँच कर सब प्रकार के दुःखों से रहित हो जाती है। फिर उसे कोई भय नहीं रहता कुछ ऐसी ही भावनाएं अपने मानस में लिए हुए हम चले आ रहे थे।

उस दिन हम जैन युवक समिति के मकान में ठहरे। गृहस्थों के मोहशील हृदय कब तक हमारे सहवास में रह सकते थे। दुनिया के काम-धन्धों में उलझे मानव-मन की स्थिति बड़ी विचित्र होती है। उसे दो क्षण की शान्ति कहाँ है? हमारे साथ बढ़ने वाले कदम फिर पीछे को मुड़ गये। और हम एक रैन बसेरा करके फिर अपनी मंज़िल की ओर बढ़ गये।

रास्ते में बोटनिकल गार्डेन (Botanical garden) भी देखा। धरती के इस स्वर्ग में चन्द मिनट विश्राम लेकर आगे बढ़े। यहाँ का वट-वृक्ष सच आश्चर्यजनक है। यह बरगद सोलवीं शताब्दी के पूर्व का है। इसकी १०४४ हवाई शाखाएं चारों ओर फैली हुई हैं। इस वृक्ष की मूल जड़ ५१ फीट की परिधि में है। बहुत से लोग इसे आश्चर्य भरी निगाहों से देख रहे थे। सफर की दूरी ने हमें अधिक देरतक वहाँ रुकने की आज्ञा नहीं दी। और हम वहाँ से सीधे अपनी राहपर चल पड़े।

एक रात हम A.L.J. Man & Co के मकान में ठहरे। रात को मोटे-मोटे मच्छरों ने हमारा जो स्वागत किया वह

अभी तक भूला नहीं है। 'दंशमशक' परीसह क्या होता है? यह तो उसी दिन मालूम पड़ा। वैसे उत्तराध्ययन में तो कई बार पढ़ा है। यदि किसी ने दंशमशक परिषजय से कर्मों की निर्गरा करनी हो तो उसे एक रात उस फैक्टरी में जरुर ठहरना चाहिए। वैसे ये पंजाबी जैन-भाइयों की फैक्टरी है जो बहुत ही धार्मिक तथा सेवाभावी हैं। सिर्फ वहाँ के मच्छरों को जरा श्रद्धा कम है। यह आन्दूल रोड़ मार्ग कहलाता है। आन्दूल एक छोटा सा कस्बा है।

आन्दूल में एक बगीचे में ठहरे। प्रतिक्रमण से कुछ पहले हम दोनों मुनि बाराण्डे में चहल कदमी कर रहे थे। एक व्यक्ति दूर Lawn में बैठा कुछ चिन्तन कर रहा था। हमनें उसे देखा और उसकी आँखों में हम भी आ गये। वह हमें देखकर हमारे पास आ गया दो मिनट हमें देखता रहा। फिर पूछने लगा। "आप कौन हैं?" "हम जैन साधु हैं।" मैंने कहा। "आप कौन हैं? कहाँ रहते हैं? क्या नाम है?" मैंने पूछा। मैं रेलवे स्टेशन टैलिग्राफ क्लर्क हूँ। यहीं निकट ही रहता हूँ। मेरा नाम सैमुल मुखर्जी है। उसने बड़ी नम्रता से मेरे प्रश्नकी तृप्ति की। 'आप यहाँ कैसे ? मैंने फिर पूछा। उसने उत्तर दिया 'मैं प्रतिदिन ही यहाँ सायं समय आता हूँ। एकान्त शान्त स्थान मुझे प्रिय लगता है। यहाँ कुछ आत्म-चिन्तन करता हूँ। दो घड़ी प्रभु को याद करता हूँ। दिनभर के किए कर्मों पर दृष्टि-पात करता हूँ। अहोभाग्य है आज कि आप सन्तों के अकस्मात

ही दर्शन हो गये। यह कहते-कहते वह आगे बढ़ा मुझे अपनी बाहों में बाँध लिया। उसके आँखों से श्रद्धा के आँसू टपक रहे थे। बड़ी मुश्किल से मैंने उसका बाहुपाश खोला। फिर वह छोटे मुनि की तरफ लपका और उनसे भी लिपट गया। वह ही प्रेम के आँसू उसके नेत्रों से छलक रहे थे। छोटे मुनि जरा पीछे हटे तो उसने दो हाथ जोड़ कर कहा। भगवान ! आप मुझे कहीं पागल न समझ लें। मैं तो आपको भगवान का रूप समझ कर ही स्पर्श कर रहा हूँ। और मैं अपवित्र आपके संग लगकर किसी तरह पवित्र हो जाऊँ। बस यही मेरी एक भावना है। "हम तुम्हारी श्रद्धा से अति प्रसन्न हैं।" हमने उसे आशीर्वाद दिया। और वह आज्ञा लेकर चला गया।

सच, मैंने श्रद्धालु तो अपने जीवन में बहुत देखे हैं किन्तु उस जैसा कोई नहीं देखा। उसकी तस्वीर अब भी आँखों के आगे आकर खड़ी हो जाती है।

आन्दूल से आगे बड़ा गाओं आता है कोलाघाट किन्तु मार्ग के एक गाओं काश्यपपुर की याद भी भुलाई नहीं जा सकती। एक रात हमें अचानक वहाँ रुकना पड़ गया। गाओं अवश्य छोटा था किन्तु हृदय उस गाओं वालों का बहुत बड़ा था। कहीं कहीं शहर तो बड़ा होता है किन्तु वहाँ के लोगों के दिल छोटे रहते हैं। इसी सम्बन्ध में एक प्रसंग स्मृति तल पर उतर आया है।

एक घर में एक अतिथि आया। वस क्या था फिर, घरवालों का चेहरा उतर गया। सोचने लगे। यह कहाँ से मुसीवत ने आ घेरा हमको? किसी तरह यह बला गले से उतारनी होगी। कुछ न कुछ तो आतिथेय करना ही होगा। एक प्लेट में आधा लड्डू, एक बरफी की नन्हीं सी डली, आधी जलेबी और एक मट्ठी का टुकड़ा डालकर उसके आगे तिउड़ी भरे माथे से बड़े निरादार के साथ लाकर रख दिया। और वे सब भी महीने भर की गली-सड़ी और बदबू मारती हुई सब चीजें। वह नया महमान यह सब कुछ देखकर सन्न रह गया। घर का मालिक उसके पास ही वैठकर खाने के लिये आग्रह करने लगा और कहने लगा "खाइये न। चुपचाप क्यों वैठ गये हैं आप। आपकी सेवा हमें कहाँ रखी है।" मेहमान शायद दिल में सोच रहा था। ऐसी शानदार डिश **Dish** भी मेरे लिए कहाँ रखी है? उसने वनावटी हंसी हंसते हुए कहा "मुझे तो कोई भूख नहीं है। और जो कुछ थोड़ी बहुत थी भी वह भी खत्म हो गई है। मुझे तो कुछ नहीं खाना है। आपने काये के लिए इतना कष्ट किया हैं?" 'नहीं, नहीं ऐसा कभी नहीं होगा। कुछ तो खाना ही होगा।' मालिक ने सेवा का भाव दर्शाते हुए कहा। बड़ी कठिनाई से अतिथि देवता ने उसका भोग स्वीकार करते हुए एक वरफी की डली उठाकर मुँह में डाली। सेठ साहव पास वैठकर अपनी वड़ाई की डींगें मारने लगे और कहने लगे, मेरे चार मकान, १० दूकानें और

सैंकड़ों बीघा ज़मीन है। लाखों का लेन-देन रोज होता है। काम इतना कि सम्भाला भी नहीं जाता। हजारों रुपया मासिक तो नौकरों का ही खर्च है। दो चार कारें तो बस इधर-उधर भागती ही रहती हैं। एक-एक लड़के के पास एक-एक स्कूटर है। साइकिल तो कोई पसन्द ही नहीं करता। एक-एक बहु के लिए एक-एक नौकर रख दिया है।" इस तरह वह आत्म-प्रशंसा के पुल पर पुल बांधता चला जा रहा था। वह शरीफ मेहमान मौन रहकर उसकी बातें सुन रहा था किन्तु दिल ही दिल वह कह रहा था। ओ! क्यों शेखी मारता है इतनी। तुम्हारा दिल कितना बड़ा है, यह तो सामने प्लेट में पड़ा हुआ नजर आ रहा है। उसने साथ ही साथ एक शेर अरशाद फरमाया—

रकबा तुम्हारे गाओं का
मीलों हुआ तो क्या?
रकबा तुम्हारे दिल का तो
एक इंच भी नहीं॥

अर्थात् क्या हुआ किसी के गाओं का मीलों क्षेत्रफल हो किन्तु उसके दिल का क्षेत्रफल तो कभी-कभी एक इंच भी नहीं होता। कहने का तात्पर्य तो केवल इतना ही है कि बड़े आदमीका दिल कभी बहुत छोटा होता है। और कभी गरीब की झोंपड़ी में हृदय की विशालता मिल जाती है। सच, काश्यपपुर के लोगों के दिल इतने ही बड़े थे। वे बंगाली थे। उन्होंने कभी जैन साधु

भी नहीं देखे थे। किन्तु उनकी वातचीत तथा व्यवहार इतना प्रिय, मधुर तथा आकर्षक था जैसे कि वे बरसों से परिचित हों। सच्ची मानवता की झाँकी उनके व्यवहार में मुझे नजर आ रही थी। काश्यपपुर से आगे मिला कोलाघाट। यह कस्बा रूप नारायण नदी के किनारे बसा हुआ है। बाजार तो बिल्कुल नदी के तटपर ही है। यहाँ जैन धर्मशाला और दि० जैन मन्दिर सब कुछ है। दि० जैनों के २५ के लगभग घर यहाँ हैं। जैन मन्दिर छोटा किन्तु सुन्दर है। यहाँ एक चन्द्र प्रभु की पद्मासन मूर्त्ति है। जो मन्दिर के बाहरी कक्ष में एक छोटे से अलग कमरा में रखी गई है। पूछने पर पुजारी ने बताया कि यह मूर्त्ति कुछ वर्ष पूर्व शरत नदी के पुल के नीचे से मिली है। उसके कथनानुसार यह मूर्त्ति २००० वर्ष पुरानी है। इस मूर्त्ति के दर्शन करने के लिए आस-पास के सभी जाति के लोग आते हैं। इसलिए इस मूर्त्ति को मन्दिर से बाहर स्थापित किया गया है। प्रायः जैन व सनातन मन्दिरों में हरिजनों का प्रवेश निषिद्ध है। महावीर के अनुयायियों को अभी तक भी महावीर के समतावाद पर विश्वास नहीं है। दुनिया में प्रायः सब जगह महापुरुपों की पूजा होती है। महापुरुषों के सिद्धान्तों की नहीं। किसी भी महान् पुरुप के आदेश को मानने से उस महान् आत्मा की पूजा स्वतः ही हो जाती है किन्तु किसी विशेष सिद्ध पुरुप की पूजा मात्र करने से जीवन में सिद्धान्त नहीं आ जाते।

कोलाघाट हमें लगभग ४ दिन तक ठहरना पड़ा। हालाँकि ाहाँ इतने दिन ठहरने की गुंजाइश भी नहीं थी। किन्तु बंगाल ी राजनैतिक स्थिति उन दिनों बड़ी विषम हो चुकी थी। कलकत्ता की हालत तो उन दिनों बहुत बिगड़ चुकी थी। अजय ुखर्जी भी उन दिनों मन्त्री पद से त्याग-पत्र देने जा रहे थे। ाार्क्सवादी नेता ज्योति बसु और अजय मुखर्जी में काफी ातभेद बढ़ चुका था। जनता में चारों ओर भय तथा आतंक था। बसों तथा ट्रेनों का सफर भी उन दिनों खतरे से खाली नहीं था। सब जगह स्कूल व कालेज बन्द हो चुके थे। बंगाल के राजनैतिक क्राइसिस को देखते हुए हम चार दिन तक कोलाघाट रुके रहे। वह भी कलकत्ता संघ के अत्यधिक आग्रह करने पर। आखिर कुछ स्थिति में सुधार हुआ तो हमनें अपने कदम आगे बढ़ाये किन्तु मनों में तनाव बराबर चल रहा था। आग ऊपर से बुझ जाने पर भी जब अन्दर ही अन्दर सुलगती है तो वह बुझी हुई नहीं समझी जा सकती। ठीक बंगाल की ऐसी ही स्थिति चल रही थी और कुछ-कुछ अब भी है। हमारा विहार बराबर चल रहा था। 'डेबरा' में हमें काफी परेशानी उठानी पड़ी। कहीं रहने के लिए जगह नहीं मिली। जब स्थान ही नहीं तो आहार मिलने का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता। बारह बज चुके थे। धरती तवे की तरह तप चुकी थी। सूर्य देवता लाल-लाल आँखों से धरती की ओर देख रहा था। हम भूखे-प्यासे उन अंगारों की वर्षा में आगे चल दिये।

तीन-चार मील पर एक गाओं मिला। बिल्कुल छोटा सा। एक प्राइमेरी स्कूल के टूटे छप्पर के नीचे जाकर विश्राम किया। इतने में कलकत्ता के बहन—भाइयों की एक टैक्सी दौड़ी चली आ रही थी। उन्होंने हमें देखा तो गाड़ी अपनी पाँखें समेट कर खड़ी हो गई। वे लोग हमें एक टूटे-फूटे छप्पर के नीचे बैठे देखकर कुछ दुःखित मन से बोले। "आप यहाँ कैसे ? क्या कोई स्थान नहीं मिला जो ऐसी जगह बैठे हैं ?" "तो क्या सब जगह पोलोक स्ट्रीट जैसा नौलक्खा स्थानक मिलेगा हमको।" मैंने कहा। मेरी बात पर वातावरण में कुछ मुस्कराहट फूटी। दुनिया में प्रत्येक व्यक्ति तथा वस्तु की कीमत समय पर ही मालूम पड़ती है। इस समय तो यह रंग भवन से भी अधिक प्रिय लग रहा है। और फिर हम तो साधु हैं। हर एक स्थिति में रहना पड़ता है। समभावी हृदय बनाये बिना साधु का गुजारा नहीं हो सकता। क्या तुमने नहीं सुना नहीं मानव जीवन का गीत ?

इस जीवन के सभी क्षण,
होत न एक समान।
इक दिन राजमहल में सोये,
इक दिन खुले मैदान॥

मैंने उन्हें पंजाबी गीत का एक पद्य सुनाते हुए कहा "कि मैंने कइ सन्तों को स्थानकों के ऊँचे सिंहासन से गाते हुए सुना है कि—

वाह-वाहरे मौज फकीरां दी.........
कदी तां पहनन शाल दुशाले
कदी गुदड़िया लीरां दी........ वाह
कदी तां चाबन चना चबीना
कदी पलेटां खीरां दी............वाह
कदी ता सौंदे रंग महल बिच
कदी छाया करीरां दी............वाह

सच मानिये पंजाबी के ये दो पद सुनकर वे भी वाह-वाह करने लगे। वे तो सब गुजराती थे किन्तु पंजाबी के इस गीत में उनको मज़ा आ गया।

हमने दोपहर तो वहीं काटी। कुछ आहार पानी किया और फिर विश्राम की दो घड़ियाँ गुज़ार कर हम आगे चल दिये। कलकत्ता के समस्त बहन-भाई हमारे साथ उस दिन विहार में चले। बातचीत में समय भी कट गया। और रास्ते की थकावट भी मालूम नहीं पड़ी। शाम को हरीना गाँव के एक स्कूल में रात्रि-वास किया। वहाँ से सब बहन भाई वापिस चले गये और हम अगले दिन जरा उग्र विहार करके सीधे खड़गपुर जा पहुँचे। मार्ग में लक्ष्मापुर गाम पड़ता है। वहाँ नदी के पास ही डाक बंगला है। कोई वहाँ ठहरना चाहे तो रात भर ठहर भी सकता है किन्तु हम तो वहाँ रुके नहीं। वहाँ से मिदनापुर शहर केवल १३ किलोमीटर है। खड़गपुर की ओर

मुड़ने से पहले एक चौराह आता है। वहाँ से बम्बई, कलकत्ता मेदनीपुर और खड़गपुर को रास्ते जाते हैं। इस चौराहे से जैन स्थानक ३ मील है। हम लगभग ११½ बजे स्थानक में पहुँचे।

मार्ग में जहाँ-जहाँ भी हम ठहरे उसकी तालिका शुरु में ही दे दी है। अतिरिक्त इसके बीच में शिवपुर रानी हट्टी, सन्दीपुर, आलमपुर, बगवान देउल्टी, डेझरा तथा टेरिया-पोकर आदि गाम पड़ते हैं। किन्तु रात्रि-वास की सुविधा इन गाओं में प्रायः कम मिलती है। खड़गपुर का जैन स्थानक केवल दो कमरोंका ही है उसमें भी एक कमरा किराया पर चढ़ा रहता है। वस एक छोटे से कमरे में ही साधु को गुजारा करना पड़ता है। फिर भी ठहरने के लिए एक स्थान तो है। दूसरों का मुँह तो नहीं देखना पड़ता। आजकल वड़े-वड़े शहरों में जगह खाली मिलती ही कहाँ है? यदि कहीं स्थान मिल भी जाता है तो वहाँ समयानुकूल वातावरण नहीं होता। अतः स्थानक तो दो कमरोंका भी काफी रहता है। और फिर दो सन्तों के लिए कितनी जगह चाहिये। हमारे लिये तो यह बहुत था। स्थानक के एरिआ को चान्दनी चौक कहते हैं। किन्तु दिल्ली का चान्दनी चौक न समझ लें कहीं। देखने पर दोनों का अन्तर समझ में आ सकता है।

वंगाल में खड़गपुर आई० आई० टी० तथा रेलवे वर्क शाप Railway work shop के लिये दुनिया भर में प्रसिद्ध

है। डेढ़ दो लाख की जनसंख्या होने पर भी मालूम नहीं होती। खरीदा तथा झपाटापुर इस के प्रसिद्ध एरिया हैं। स्था० जैनों के सात आठ घर ही हैं किन्तु दि० दे० तथा स्था० जैनों के सब मिलाकर ५० के लगभग घर हो जाते हैं। यहाँ अन्य जनता में भी जैन मुनियों के लिए हृदय में बहुत स्थान है। हम यहाँ कुछ दिनों के लिए ही आए थे किन्तु विधि ने तथा जेनता के प्रेम ने हमें चालीस दिनों तक आगे बढ़ने ही नहीं दिया। जहाँ कुछ लाभ हो और धर्म की प्रभावना हो वहाँ अधिक दिन रुकने में कोई हानि भी नहीं होती। जहाँ लोगों में सद्ज्ञान की प्यास हो और सन्तों का आना कभी-कभी ही होता हो और फिर दोबारा आने की जल्दी सम्भावना भी न हो तो ऐसी स्थिति में चार दिन साधु अधिक ठहर जाये तो कोई बुरा नहीं। उत्सर्ग के साथ अपवाद रहता ही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव को देखकर ही चलना ठीक होता है। किन्तु हर समय अपनी इच्छा से द्रव्य, क्षेत्र, काल तथा भाव के फारमूले का प्रयोग करना तो केवल इसका दुरुपयोग ही कहा जायेगा। साधक जब सदाशय, सदुद्देश्य तथा सद्भावना से उक्त सिद्धन्त का आश्रय लेता है तो वह अवश्य कल्याण, शान्ति तथा निर्माण के लिए होता है। अपवाद जीवन का सामान्य सिद्धान्त नहीं होता। वह तो जीवन का सामायिक सत्य है जो किसी विशेप प्रयोजन के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसके पीछे आत्मा की पुरी जागरुकता रहती है, प्रमाद बिल्कुल नहीं।

महावीर जयन्ती चली आ रही थी। हमने सोचा यदि इधर ही जयन्ती का कार्य-क्रम बन जाये तो अच्छा है। आगे तो ८०-६० मील तक कोई क्षेत्र इधर-उधर दिखाई नहीं देता। इधर पंजाब, राजस्थान तथा सौराष्ट्र जैसे तो क्षेत्र नहीं हैं। जहाँ साधुओं को बने-बनाये मैदान तैयार मिलते हैं। और जाते ही खेल शुरु हो जाता है। इधर तो पहले बड़ी मेहनत से मैदान तैयार करना पड़ता है और फिर भी खेल की सफलता भाग्य के हाथ में रहती है। खड़गपुर में कुछ दिन रहने से क्षेत्र में कुछ प्राण आ ही गये थे। जाग्रति के क्षणों में ही सामाजिक कामों को सफलता मिला करती है। आलसी लोगों के आश्रय पर किसी योजना को आरम्भ करना अपनी ही हंसी करवाना है। सोयी हुई कौमों के भाग्य सदा सोये हुए ही रहते हैं। और जागती समाजों का सौभाग्य सदा जागता रहता है। खड़गपुर को अहिंसा सम्मेलन के लिए उपयुक्त क्षेत्र समझकर मैंने अपने सहयोगी श्री विजय मुनिजी से विचार विनिमय करके समाज के समक्ष अपनी एक योजना प्रस्तुत की। जैन व अजैन जनता ने मेरी इस योजना का हार्दिक स्वागत किया। और इसे सफल बनानेके लिए अपने प्रत्येक प्रकारके पूर्णसहकार का वचन दिया। जनता के ऊँचे इरादे, दृढ़ संकल्प, हार्दिक उत्सुकता तथा लगन को देखकर मुझे यह पूर्ण विश्वास हो गया था कि सफलता सम्मेलन के चरण छूयेगी और सारे बंगाल में सम्मेलन अहिंसा के दीप जला कर हिंसा के अन्धकार को दूर करेगा।

वह देखो घड़ी ने चार बजा दिये हैं। आपकी मधुर स्मृति में दो घण्टे तो मालूम ही नहीं पड़े गरमी की उत्कटता भी कुछ ज्ञात नहीं हुई। किन्तु हाँ। कभी-कभी प्रस्वेद बिन्दु ललाट से टपककर पत्र की गोद में अवश्य बिखरते रहे हैं। इन्होंने सोचा चलो हम तो पत्र से लिपटकर किसीके चरणों में तो पहुँच ही जायेंगे। अब तो मौका है। क्यों हाथ से जाने दिया जाये। वह देखो सूर्य पश्चिम की ओर भागा जा रहा है। गरमी का जोर कम हो गया है। चारों ओर चहल-पहल शुरु हो गई है। आकाश के पलंग से सोई नीरवता जाग उठी है। लेखनी अब विश्राम चाहती है। खड़गपुर अहिंसा सम्मेलन की मनोरम झाँकी फिर अगले पत्र में। पूज्य महाराज श्री जी के चरण कमलों में सादर वन्दना करें और सुखसाता पूछें। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो अवश्य लिखिये। संकोच मत करें जरा भी, आपका अपना ही—

मुनि मनोहर 'कुमुद'
भुवनेश्वर

अहिंसा वह धर्म है कि जिस पै
कुदरत नाज़ करती है।

सदाक़त नाज़ करती है,
नदामत नाज़ करती है॥

उसूलों पर इसी के शाने-
वहदत नाज़ करती है।

हक़ीक़त में अगर पूछो,
हक़ीक़त नाज़ करती है॥

—अमीर

वह आँख, आँख नहीं, वह दिल, दिल नहीं।
जिसे किसी की मुसीबत नज़र नहीं आती॥

—अहमदी

हर दुखी को आँसुओं की बूँद दो।
इस ख़ज़ाने में न आयेगी कमी॥

—हफ़ीज

★

खड़गपुर
का
अहिंसा सम्मेलन

पत्र !

(७)

राष्ट्रपति सचिवालय PRESIDENT'S SECRETARIAT,
राष्ट्रपति भवन, RASHTRAPATI BHAVAN,
नई दिल्ली-४ NEW DELHI-4.

अप्रैल 16, 1970

पत्रावली सं० 18 हि 169

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम भेजा 10 अप्रैल, 1970 का आपका पत्र मिला। यह जान कर प्रसन्नता हुई कि भगवान महावीर की जयन्ती के उपलक्ष्य में एक विराट अहिंसा सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

सम्मेलन की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभ कामनायें भेजते हैं।

भवदीय,
(खेमराज गुप्तः)
राष्ट्रपति के अपर निजी सचिव

डा० जी० एस० एन० मूर्ति,
अध्यक्ष, अहिंसा सम्मेलन,
जैन भवन,
चान्दनी चौक, खड़गपुर।

भुवनेश्वर
५-७-७१

प्रिय बन्धु मुनि श्री भद्रजी

अति स्नेह पूर्वक सुखसाता।

हम दोनों मुनियों की ओर से तत्र विराजित पूज्य महाराज जी के पाद-पद्मों में वन्दना अर्ज करके सुखसाता की शुभ पृच्छा करें। पहले एक पत्र आपकी सेवा में प्रेषित किया था। कुछ दिनों तक आपके कोमल कर-कमलों का स्पर्श कर सकेगा वह। कल इधर उधर के कामों में व्यस्त रहा। रविवार था कल। सबके लिए अवकाश का दिन और अपने लिए तो नावकाश का दिन हो जाता है। रविवार का प्रवचन भी Sunday edition Newspaper की तरह बड़ा बन जाता है। लोगों के आने-जाने का क्रम दिन भर चलता ही रहता है। दर्शनार्थी भी रविवार को ही बाहर से प्रायः अधिक आते हैं। आज के मनुष्य ने प्रत्येक काम के लिए रविवार का दिन Fix कर दिया है। केवल जन्म और मरण बस दो ही काम ऐसे हैं जिनके लिए वह रविवार का दिन नहीं रख सकता क्योंकि प्रकृति के इन दो अटल विधानों में उसका कोई हस्तक्षेप हो नहीं सकता। यदि कुदरत के घर में इसका कुछ बस चलता तो शायद जीवन का उदय-अस्त भी रविवार को ही होता। अन्य

दिन के लिए तो यह वहाँ से भी Stay Order ले आता किन्तु क्या करे मजबूर है। बड़ा लाचार है। कुदरत के नियमों में कुछ हेर-फेर कर नहीं सकता यह अन्नकीट बिचारा ! कल रविवार होने से लोगों की भीड़-भाड़ अधिक रही। और कल लेखनी को भी पूरा विश्राम मिल गया। आज कुछ निवृत्ति के क्षणों में हूँ। इसलिए खड़गपुर अहिंसा सम्मेलन के लिए कुछ लिखने बैठ गया हूँ।

इस समय सुबह के नौ बजे हैं। शायद आप इस समय वहाँ प्रवचन देने में व्यस्त हों। श्रावक श्राविकाओं को संबोध देने में आप खून-पसीना एक कर रहे हों। तहत्ति बचनों से आप पुलकित हो रहे हों और इसी मस्ती में आप सब कुछ विस्मृत किये बैठे हों। ऐसी स्थिति में किसी परदेसी की याद आपके मानस में कैसे उतर सकती है। किन्तु इधर यह सब वाह ! वाह !! नहीं है। शान्ति के इन मधुर क्षणों में ही कुछ लिखने का मूड Mood बन जाता है।

मैंने आपको अपने पूर्व पत्र में यह लिखा था कि वीर जयन्ती के उपलक्ष्य में एक अहिंसा सम्मेलन की योजना मैंने खड़गपुर संघ के सन्मुख उपस्थित की। जिसे सबने एक स्वर से शिरोधार्य किया। वीर जयन्ती के नाम पर इधर समारोह में सफलता मिलने की सम्भावना कुछ कम रहती है। क्योंकि इस प्रान्त में जैन अत्यल्प संख्या में हैं। जो हैं भी वे

भी सब इधर उधर तथा निकट-दूर से आए हुए। दूर रहने से प्रायः गुरुओं के सम्पर्क से भी दूर ही रहते हैं। कभी कोई सन्त इधर दो चार वर्ष के बाद आ जाए तो कुछ दिन सत्संग मिल जाता है इनको। निरन्तर दूसरे ही वातावरण में रहने से संस्कार भी दूसरी ही प्रकार के हो जाते हैं। नयी सन्तति तो बिल्कुल धार्मिक संस्कारों से अछूती ही रहती है। उनके हृदय पटल पर इधर के ही वातावरण की छाया दिखाई देती है। उनके हृदय व्याख्यान आदि श्रवण के लिए भी शीघ्र तैयार नहीं होते। छोटे-छोटे कामों के लिए भी उनके मनों को प्रेरणा अपेक्षित है। पुराने बूढ़े लोग अपने पुराने संस्कारों से बन्धे हुए केवल बाह्य धर्म ध्यान की क्रियाओं तक सीमित रहते हैं। इससे अधिक उन विचारों को कुछ पता भी नहीं है। आधुनिक युग में किस प्रकारकी धर्म-क्रान्ति की आवश्यकता है। जन मानस में कैसे अपनी संस्कृति का प्रभाव जमाना है। युग की तेज गति के साथ चलने के लिए कितने तेज कदम उठाने की जरूरत है? इत्यादि बातों पर इन सीधे-सादे भावुक हृदयों को कुछ मनन चिन्तन करने के लिए भला अवकाश ही कहाँ है? जीवन की समस्याएं इनके मस्तिष्क को सदैव घेरे रहती हैं। भले ही वे जीवन के किसी गम्भीर चक्र में पड़े हों किन्तु सन्तों की प्रेरणा मिलने पर धर्म की वेदी पर कुछ न्यौछावर करने के लिए तत्पर हो ही जाते हैं। क्योंकि भले ही ये परदेस में रहते हैं किन्तु फिर भी धार्मिक संस्कार इनके हृदय-प्रांगण में क्रीड़ाशील रहते ही हैं। केवल इन्हें

थोड़ा सा झकझोरने की आवश्यकता है। युवा वर्ग को आकर्षित करने के लिए विशेष प्रयास की अपेक्षा रहती है। वैसे तो नयी पीढ़ी का सब जगह एक ही रूप पाया जाता है किन्तु इस ओर सन्त समागम न होने से विशेष रूप से धर्म की उपेक्षा का भाव देखने में आता है। प्रायः देखा गया है कि प्रेरणा, सम्पर्क, सत्संग तथा कुलिनता आदि तत्व मिलकर भूले-भटके मानव को भी कर्त्तव्य-पारायणता की ओर मोड़ देते हैं।

खड़गपुर जब हम पहले- पहल आए तो चेतना शैथिल्य के चरम बिन्दु पर नजर आ रही थी। केवल दो चार पुण्यात्माओं के अतिरिक्त और कुछ नजर नहीं आ रहा था। सोचा कैसे दिन कटेंगे यहाँ? फिर दिमाग में आया अरे मन! क्यों निराश होता है? अभी तो पहली-पहली मुलाकात है। क्यों दिल छोड़ते हो। समय तो धीरे-धीरे ही बन्धता है। भगवान सब भली करेंगे। यह सोचकर हम वहाँ कुछ दिन जमें रहे। धीरे-धीरे समय में रंग आता गया। कान्ति भाई सोमानी, दलीचन्द भाई मेहता, यादवजी भाई गाँधी, वटुक भाई ठक्कर के धर्मोत्साह को देखकर हृदय की लड़खड़ाती आशा को सम्बल मिला। जैन तथा अजैन भाइयों में चेतना अंगड़ाई लेकर जाग उठी। सैंकड़ों बहन भाइयों की उमड़ती हुई श्रद्धा ने हृदय को विश्वास के सूत्रों से बान्ध दिया। मन को यह पूरी आशा बन्ध

गई कि महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में जो भी आयोजन किया जाएगा वह अवश्य सफल रहेगा। और वह आयोजन साम्प्रदायिक न होकर सार्वजनिक रहे तो और अधिक सफल रह सकता है। मनुष्य की दृष्टि जब क्षुद्र बनती है तो वह स्वयं क्षुद्र बन जाता है और दृष्टि जब विराट होती है तो मनुष्य विराट बन जाता है। दूसरों से महानता तथा विशाल हृदयता की आशा करने से पहले अपने ही मन को विशाल बनाना अधिक अच्छा है। अपनी महानता का बिम्ब दूसरे के हृदय-दर्पण पर महानता के रूप में पड़ेगा अवश्य। और वह भी आपके प्रति महानता का व्यवहार करेगा। यदि एक क्षण के लिए सोच लीजिए कि दूसरा वैसा नहीं करता तो फिर भी आपको तो कोई हानि होने वाली नहीं है। उधर अपयश और इधर सुयश आपके साथ रह जायेगा। शान्ति, निर्माण तथा उल्लास आपके महान जीवन गगन के देदीप्यमान नक्षत्र बनकर रहेंगे। किसी मेरे बन्धु को यह सोचने का तथा कहने का अवसर नहीं मिले कि मुनिजी हमारे सामने एक महावीर जयन्ती के नाम से एक साम्प्रदायिक समारोह की योजना प्रस्तुत कर रहे हैं। बात तो विश्वधर्म की तथा विश्व-शान्ति की, की जाती है और योजना साम्प्रदायिक प्रस्तुत कर रहे हैं। मनुष्य के हृदय तथा मस्तिष्क का कोई विश्वास नहीं होता कि वह किस समय क्या सोच ले। कोई भी मेरा बन्धु यह न विचार ले कि महावीर तो जैनों के थे तो फिर अपना इससे क्या सम्बन्ध है? यह तो जैनों को ही

करना है। हम इसमें सक्रिय भाग कैसे ले सकते हैं? मेरे सामने वैसे इस प्रकार से सोचनेवाला कोई था नहीं किन्तु समाज में सब तरह के लोग रहते हैं। एक दूसरे को उकसाने तथा बहकाने वालों की भी कोई कमी नहीं होती। "अरे! तुम क्यों इसमें इतना रस लेते हो? महावीर तो जैन-धर्म के तीर्थंकर हुए हैं। हमारे थोड़ा थे वे? हमारा उसका क्या मेल? क्या वे जैन लोग हमारे रामनवमी तथा कृष्णाष्टमी के उत्सवों पर भाग लेते हैं? जब वे नहीं आते इधर तो आप उधर सक्रिय भाग क्यों ले रहे हैं? दर्शक बनकर वे आते हैं तो दर्शक बनकर हमें चले जाना चाहिये उनके जलसों में। और फिर अन्य रही चन्दे की बात। वह तो एक व्यवहार तथा शिष्टाचार है। जैसे वे दें वैसे उन्हें दे दो। वह कोई श्रद्धा की चीज नहीं है।" उक्त प्रकार की बातों से कोई भी किसी के मन को बदल सकता है। और उसमें साम्प्रदायिकता का विष भर सकता है। यदि कोई अजैन बन्धु ऐसे सोचे, तो आश्चर्य भी नहीं है। क्योंकि जैन भी दूसरों के प्रति ऐसे सोच सकते हैं। इस संसार में साम्प्रदायिकता सब जगह है और आध्यात्मिकता कहीं-कहीं। संकीर्णता प्रायः हर स्थान पर और विशालता कहीं-कहीं ही मिलेगी। दूसरे को दोष देने से पहले अपने ही अन्तःकरण में झाँकी डालनी पड़ेगी तब वस्तुस्थिति ठीक समझ में आ सकती है।

जैन लोग प्रायः स्वयं ही कहते रहते हैं कि "महावीर जैन धर्म के तीर्थंकर थे। वे हमारे थे। हमें ही उनकी पूजा करने का

अधिकार है। किसी और को नहीं।" जब जैन बन्धु ऐसे बोलते हैं तो बात स्पष्ट हो जाती है कि हम स्वयं महावीर भगवान की महानता को छोटा करते जा रहे हैं। हम उन्हें समाज के पिंजरे में बंद करके उनकी विराटता को ही बन्दी बना रहे हैं। इसमें अपनी ही संकीर्ण दृष्टि का दोष है। अपनी ही छाया दूसरे के चित्त पर पड़ती है। वास्तव में दुनिया का प्रत्येक महापुरुष किसी एक जाति तथा समाज का नहीं होता। वह तो सब के लिए होता है। उसके जीवन का प्रकाश सारे संसार के अन्धकार को दूर भगाने के लिये होता है। उसके जीवन-सिद्धान्त-विश्व के कल्याण के लिए होते हैं। किसी विशेष जन-सम्प्रदाय के लिए नहीं। यदि वे किसी एक सम्प्रदाय के बन गये तो वे महान नहीं कहे जा सकते। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सूत्र फिर उनकी वाणी से नहीं निकल सकता। भगवान महावीर ने अपने को कभी समाज की चार दिवारी में बन्द नहीं किया। हाँ! हमलोगों ने अवश्य उनको समाज में बान्ध कर छोटा कर दिया है। सच, बिल्कुल छोटा कर दिया है। क्यों नहीं हम कहते कि वे सारे संसार के थे और उनका जन्म ही संसार के उद्धार के लिए हुआ था। जिस दिन हम महावीर भगवान को विश्वदेवता के रूप में उपस्थित करेंगे उस दिन वीर जयन्ति विश्वोत्सव के रूप में मनाई जायेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं।

हम भगवान महावीर के अनुयायी कहलाते हैं किन्तु वास्तव

में अनुयायी वही होता है जो अपने नेता के आदर्शों पर चलता है। उसके निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करता है। किन्तु हमें महावीर से जितना प्यार है उसके सिद्धान्तों से नहीं। महावीर के जितने 'जयकार' हम गुंजाते हैं उतना उनके उपदेशों पर चलकर अपनी 'जय' हम नहीं करते। यह स्थिति प्रायः सब सम्प्रदायों की है। हिन्दुओं को जितने राम व कृष्ण प्यारे हैं उतना वे राम तथा भगवान कृष्ण के सिद्धान्तों से अनुराग नहीं रखते। रामायण तथा गीता पर जितनी श्रद्धा है उतनी इनकी शिक्षाओं पर नहीं। यही एक भूल है जो शताब्दियों से की जा रही है।

किसी भी महापुरुष का जन्म दिन मनाने का केवल यह ही उद्देश्य नहीं होता कि उन्हें लच्छेदार शब्दों में श्रद्धाञ्जलिए अर्पित की जाएं और उनकी जीवन गाथाओं को दुहराकर लोगों का मनोरंजन मात्र किया जाए। उनके जीवन की चमत्कारिक घटनाएं उपस्थित करके लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया जाए। धन्य ! धन्य !! के शब्दों से गगन गूँजने लगे। शत-शत मस्तक श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाएं। यह सब कुछ हो तो कोई बुरा नहीं। अच्छा ही है। इससे भी वातावरण में सुगन्धि बिखरती है। किन्तु वास्तविक लक्ष्य तो तब पूरा होता है जब जनता उन महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करें और अपने जीवन में उनके आदर्शों को उतारने का संकल्प करें। यह सदैव याद रखना चाहिये कि महापुरुष तो कोई भी सदा

जीवित नहीं रहता। किन्तु उसके आदर्श ही जीवित रहते हैं। अपने आदर्शों से वह महापुरुष भी जीवित रहता है। और आदर्श समाज को भी जीवित रखते हैं। अपने सिद्धान्तों से गिर जाना ही समाज की नैतिक मृत्यु है। महापुरुषों के सिद्धान्त ही समाज का जान व प्राण होते हैं। भगवान महावीर के जीवन का अहिंसा ही सबसे ऊँचा सिद्धान्त था। जीवन भर उन्होंने संसार को अहिंसा का प्रकाश दिया और डंके की चोट से कहा कि भयभीत मानवता के लिए अहिंसा ही एक शरण-द्वार है। इसकी सर्वाङ्ग साधना जगत के लिए अमर शान्ति के स्वर्णिम द्वार खोल सकती है। सत्य जीवन का साध्य है और उस लक्ष्य तक पहुँचने का पावन साधन अहिंसा है। अहिंसाकी पूजा मानवता की पूजा है। ईश्वर की यही भक्ति है और आनन्द के द्वार का अहिंसा ही एक सच्चा उद्घाटन है। अहिंसा प्रकृति का अटल विधान है। इसकी अवहेलना संसार के लिए प्रलय का एक आह्वान है। दुःख, क्लेश, द्वन्द्व, उपद्रव तथा विभीषिका का एक निमन्त्रण है। यह किसी एक जाति व समाज की विरासत नहीं है। यह है सारे विश्वका एक अनादि सत्य चिरन्तन तथ्य। आत्मा का अपना सत्य स्वरूप है। जिसके विना मनुष्य की अपनी हस्ती खतरे में पड़ जाती है। मानव समाज के अस्तित्व की अहिंसा ही आधार शिला है। जो इसकी जड़ों पर कुल्हाड़ी रखता है वह अपनी ही जड़ें उखाड़ने की मूर्खता करता है। अहिंसा वह कल्प वृक्ष है जिसकी अमर छाया में मानवता को

में अनुयायी वही होता है जो अपने नेता के आदर्शों पर चलता है। उसके निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करता है। किन्तु हमें महावीर से जितना प्यार है उसके सिद्धान्तों से नहीं। महावीर के जितने 'जयकार' हम गुंजाते हैं उतना उनके उपदेशों पर चलकर अपनी 'जय' हम नहीं करते। यह स्थिति प्रायः सब सम्प्रदायों की है। हिन्दुओं को जितने राम व कृष्ण प्यारे हैं उतना वे राम तथा भगवान कृष्ण के सिद्धान्तों से अनुराग नहीं रखते। रामायण तथा गीता पर जितनी श्रद्धा है उतनी इनकी शिक्षाओं पर नहीं। यही एक भूल है जो शताब्दियों से की जा रही है।

किसी भी महापुरुष का जन्म दिन मनाने का केवल यह ही उद्देश्य नहीं होता कि उन्हें लच्छेदार शब्दों में श्रद्धाञ्जलिए अर्पित की जाएं और उनकी जीवन गाथाओं को दुहराकर लोगों का मनोरंजन मात्र किया जाए। उनके जीवन की चमत्कारिक घटनाएं उपस्थित करके लोगों को आश्चर्य चकित कर दिया जाए। धन्य! धन्य!! के शब्दों से गगन गूँजने लगे। शत-शत मस्तक श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाएं। यह सब कुछ हो तो कोई बुरा नहीं। अच्छा ही है। इससे भी वातावरण में सुगन्धि बिखरती है। किन्तु वास्तविक लक्ष्य तो तब पूरा होता है जब जनता उन महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करें और अपने जीवन में उनके आदर्शों को उतारने का संकल्प करें। यह सदैव याद रखना चाहिये कि महापुरुष तो कोई भी सदा

जीवित नहीं रहता। किन्तु उसके आदर्श ही जीवित रहते हैं। अपने आदर्शों से वह महापुरुष भी जीवित रहता है। और आदर्श समाज को भी जीवित रखते हैं। अपने सिद्धान्तों से गिर जाना ही समाज की नैतिक मृत्यु है। महापुरुषों के सिद्धान्त ही समाज का जान व प्राण होते हैं। भगवान महावीर के जीवन का अहिंसा ही सबसे ऊँचा सिद्धान्त था। जीवन भर उन्होंने संसार को अहिंसा का प्रकाश दिया और डंके की चोट से कहा कि भयभीत मानवता के लिए अहिंसा ही एक शरण-द्वार है। इसकी सर्वाङ्ग साधना जगत के लिए अमर शान्ति के स्वर्णिम द्वार खोल सकती है। सत्य जीवन का साध्य है और उस लक्ष्य तक पहुँचने का पावन साधन अहिंसा है। अहिंसाकी पूजा मानवता की पूजा है। ईश्वर की यही भक्ति है और आनन्द के द्वार का अहिंसा ही एक सच्चा उद्घाटन है। अहिंसा प्रकृति का अटल विधान है। इसकी अवहेलना संसार के लिए प्रलय का एक आह्वान है। दुःख, क्लेश, द्वन्द्व, उपद्रव तथा विभीपिका का एक निमन्त्रण है। यह किसी एक जाति व समाज की विरासत नहीं है। यह है सारे विश्वका एक अनादि सत्य चिरन्तन तथ्य। आत्मा का अपना सत्य स्वरूप है। जिसके बिना मनुष्य की अपनी हस्ती खतरे में पड़ जाती है। मानव समाज के अस्तित्व की अहिंसा ही आधार शिला है। जो इसकी जड़ों पर कुल्हाड़ी रखता है वह अपनी ही जड़ें उखाड़ने की मूर्खता करता है। अहिंसा वह कल्प वृक्ष है जिसकी अमर छाया में मानवता को

सच्ची शान्ति मिलती है। अहिंसाका पालन करना ही धर्म है और विश्व को इसका पुनीत सन्देश देना धर्म है। अहिंसा की ज्योति निरन्तर जगती रहे। कभी बुझने नहीं पाये। इस दिशा में मानव का प्रयास सतत् रहना चाहिये। विश्व कल्याण की यही एक मात्र जननी है। सत्य से बढ़कर संसार में कोई अवतार नहीं। अहिंसा से बढ़कर जगत में कोई देवी नहीं इस अलौकिक देवी की पूजा अर्चना, आराधना करे और चौबीस घण्टे इसका चिन्तन, मनन तथा आचरण जीवन में चले। इससे बढ़कर और कोई भक्ति नहीं। हिंसा और भक्ति का कोई सामंजस्य नहीं। अहिंसा तथा भौतिक शक्तिएं मिलकर संसार का कल्याण करती हैं। हिंसा तथा भौतिक शक्ति दोनों का मिलन संसार के लिए प्रलय का संदेश होता है। हिंसा जीवन का सिद्धान्त नहीं। यह तो अपवाद है जो सर्वथा हेय होने पर भी जीवन में कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है। किन्तु यदि आप गहराई से देखें तो ज्ञात होगा कि इसके पीछे भी सत्य तथा अहिंसा की ही उपलब्धि का पावन उद्देश्य रहता है। हिंसा को सिद्धान्त मानकर चलना निरी मूर्खता है। यदि हिंसा एक सत्य है तो फिर हिंसक आत्म-रक्षा के लिए प्रयत्न क्यों करता है? क्योंकि सिद्धान्त अपने तथा दूसरों के लिए एक समान ही होता है। अन्ततोगत्वा प्रत्येक मानव को घूम फिरकर अहिंसा के अभय द्वार में प्रवेश पाना ही होता है। अहिंसा दुनिया का सबसे बड़ा सम्प्रदाय है। सत्य संसार का

सबसे बड़ा मत है। विश्व के समस्त सम्प्रदायों का मूल अहिंसा तथा सत्य ही है। मूल को सींचने से वृक्ष स्वयं ही हरा-भरा रहता है कहा भी तो है –

एक को साधे सब सधे,
सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को,
फूले फले अघाय॥

मूल में पानी देने से वृक्ष में प्राण स्वतः ही चले आते हैं और उसके पत्ते-पत्ते में नया जीवन अपने-आप उदय होता रहता है।

अहिंसा विश्व में किसी को अपने से जुदा नहीं समझती। उसके विराट मानस में भगवान कृष्ण के विराट रूप की तरह समूचे विश्व का रूप देखा जा सकता है। उसके सम्बन्ध में किसी शायर ने क्या ही सुन्दर कहा है –

कहीं बिजली गिरे-वह अपना,
गुलशन हो कि गैरों का।
मुझे अपनी ही शाखे आशियाँ,
मालूम होती है— ॥

सच, अहिंसा की इन अमर ध्वनियों को सारे बंगाल में प्रसारित करने के लिए महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रथम अहिंसा सम्मेलन बुलाने की योजना बनाई गई।

सच्ची शान्ति मिलती है। अहिंसाका पालन करना हो धर्म है और विश्व को इसका पुनीत सन्देश देना धर्म है। अहिंसा की ज्योति निरन्तर जगती रहे। कभी बुझने नहीं पाये। इस दिशा में मानव का प्रयास सतत् रहना चाहिये। विश्व कल्याण की यही एक मात्र जननी है। सत्य से बढ़कर संसार में कोई अवतार नहीं। अहिंसा से बढ़कर जगत में कोई देवी नहीं इस अलौकिक देवी की पूजा अर्चना, आराधना करे और चौबीस घण्टे इसका चिन्तन, मनन तथा आचरण जीवन में चले। इससे बढ़कर और कोई भक्ति नहीं। हिंसा और भक्ति का कोई सामंजस्य नहीं। अहिंसा तथा भौतिक शक्तिएं मिलकर संसार का कल्याण करती हैं। हिंसा तथा भौतिक शक्ति दोनों का मिलन संसार के लिए प्रलय का संदेश होता है। हिंसा जीवन का सिद्धान्त नहीं। यह तो अपवाद है जो सर्वथा हेय होने पर भी जीवन में कभी-कभी अनिवार्य हो जाता है। किन्तु यदि आप गहराई से देखें तो ज्ञात होगा कि इसके पीछे भी सत्य तथा अहिंसा की ही उपलब्धि का पावन उद्देश्य रहता है। हिंसा को सिद्धान्त मानकर चलना निरी मूर्खता है। यदि हिंसा एक सत्य है तो फिर हिंसक आत्म-रक्षा के लिए प्रयत्न क्यों करता है? क्योंकि सिद्धान्त अपने तथा दूसरों के लिए एक समान ही होता है। अन्ततोगत्वा प्रत्येक मानव को घूम फिरकर अहिंसा के अभय द्वार में प्रवेश पाना ही होता है। अहिंसा दुनिया का सबसे बड़ा सम्प्रदाय है। सत्य संसार का

सबसे बड़ा मत है। विश्व के समस्त सम्प्रदायों का मूल अहिंसा तथा सत्य ही है। मूल को सींचने से वृक्ष स्वयं ही हरा-भरा रहता है कहा भी तो है -

एक को साधे सब सधे,
सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को,
फूले फले अघाय॥

मूल में पानी देने से वृक्ष में प्राण स्वतः ही चले आते हैं और उसके पत्ते-पत्ते में नया जीवन अपने-आप उदय होता रहता है।

अहिंसा विश्व में किसी को अपने से जुदा नहीं समझती। उसके विराट मानस में भगवान कृष्ण के विराट रूप की तरह समूचे विश्व का रूप देखा जा सकता है। उसके सम्बन्ध में किसी शायर ने क्या ही सुन्दर कहा है—

कहीं बिजली गिरे-वह अपना,
गुलशन हो कि गैरों का।
मुझे अपनी ही शाखे आशियाँ,
मालूम होती है— ॥

सच, अहिंसा की इन अमर ध्वनियों को सारे बंगाल में प्रसारित करने के लिए महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रथम अहिंसा सम्मेलन बुलाने की योजना बनाई गई।

वैसे तो ऐसे सम्मेलन दूसरे प्रान्तों में समय-समय पर आयोजित होते रहते हैं किन्तु बंगाल जैसे प्रदेश में अहिंसा सम्मेलन विशेष महत्व रखते हैं। बंगाल देश प्रायः दुर्गा का पुजारी है। दुर्गा शक्ति का प्रतीक है। शक्ति पर विश्वास रखने वाले लोग अहिंसा का अर्थ जल्दी नहीं समझ सकते। प्रान्त की संस्कृति का प्रभाव मनुष्य के संस्कारों पर अवश्य रहता है। सुभाष चन्द्र बोस को शक्ति पर अधिक विश्वास था। अहिंसा पर उनकी आस्था कम थी। महात्मा गाँधी के साथ उनका यही मतभेद था। बंगाल और उड़िसा का मुख्य आहार मच्छली और चावल है। ये दोनों मत्स्य देश हैं। मच्छली यहाँ के लोगों का प्रधान एवं साधारण खाद्य है। बाज़ारों में मच्छलियों के अनाज की तरह ढेर लगे रहते हैं। किसी को किसी तरह की कोई घृणा हो नहीं। कहीं-कहीं यज्ञोपवीत तथा तिलकधारी ब्राह्मण, पण्डित तथा तत्ववेता लोगों को भी यहाँ मच्छली के बिना गुजारा नहीं। प्रायः आचार तथा विचार में हिंसा न्यूनाधिक संसार के समस्त प्राणियों में रहती है किन्तु जहाँ आहार में पञ्चेन्द्रिय जीवों की हिंसा का बाहुल्य हो उन्हें ज़रा अहिंसा के सागर में डुबकी लगाना कठिन हो जाता है। ऐसे प्रदेश में विचारों को अहिंसक मोड़ देने के लिए अहिंसा सम्मेलन अपना विशेष महत्व रखते हैं। राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा पंजाब जैसे प्रदेशों में अहिंसा सम्मेलन जैसे कार्यक्रम प्रायः होते ही रहते

हैं। जहाँ जो चीज बहुलता से होती है वहाँ उसका महत्व अवश्य कम हो जाता है। जहाँ जो काम कभी-कभी होता है वहाँ उसके प्रति अवश्य अधिक उत्सुकता पाई जाती है और वहाँ उसका कुछ मूल्यांकन भी होता है। बंगाल में वैसे भी समाजवाद तथा मार्क्सवादी तत्व अधिक क्रियाशील देखे जाते हैं। हिंसा का खुले आम ताण्डव नृत्य यहाँ प्रायः होता रहता है। पूँजीवाद ने जो प्रच्छन्न हिंसा वा अत्याचार किये हुए हैं अब वही घोर पाप भूत बनकर इनके सिरपर सवार हो रहे हैं। हिंसा से प्रतिहिंसा का जन्म होता ही है। बंगाल के लालसलाम पूँजीवाद के मजदूरों के प्रति हृदय हीन व्यवहारों के दुष्परिणाम हैं। भारत की जनता ने अहिंसा को सिद्धान्त के रूप में तो सदा से माना किन्तु आवश्यकता है उसे व्यवहारिक रूप में स्वीकार करने की। उसे अपने आचारिक धरातल पर उतारने की। सच कहता हूँ मैं कि अहिंसक समाज रचना ही समस्त समस्याओं का एक मात्र समाधान है। जीवन-शान्ति का यह मन्त्र आज सारे विश्व को पढ़ाने की आवश्यकता है। इसी पावन उद्देश्य को लेकर बंगाल में अहिंसा सम्मेलन का आयोजन किया गया। आग की ज्वालाओं में ही फायर ब्रिगेड की उपयोगिता होती है। अन्धकारमय कक्ष में ही दीपक की गरिमा बढ़ती है। ऊसर तथा प्यासी धरती पर ही मेघ वर्षण सार्थक होता है। बंगाल की धरती पर भी अहिंसा सम्मेलन की सार्थकता का वस्तुतः यही रहस्य था।

प्रिय मुने ! वीर जयन्ती पर अहिंसा सम्मेलन क्यों और किसलिए रखा गया इसके बारे में दो शब्द आपको लिख दिये हैं। यह कोई आपको उपदेश नहीं दिया बल्कि वस्तुस्थिति को स्पष्ट किया है। घड़ी की सूई ऐन ग्यारह पर पहुँच गई है। गोचरी का समय होने जा रहा है। बस, आज इतना ही। खड़गपुर अहिंसा सम्मेलन की झाँकी फिर आगामी पत्र में। श्रद्धेय श्री राम मुनिजी तथा स्नेहास्पद श्री सतीश मुनिजी को यथा योग्य वन्दना करें तथा सुखसाता पूछें। योग्य सेवा से अवश्य अनुगृहीत करें।

आपका

मुनि मनोहर 'कुमुद'

भुवनेश्वर (उड़िसा)

भुवनेश्वर
(उड़ीसा)
६-७-७१

सत्यशील श्री भद्र मुनि जी

स्नेह सहित सुखसाता।

पूज्य महाराज के चरण-सरोजों में सादर वन्दना कहें और सविनय सुखसाता की श्रद्धान्वित पृच्छा करें। आपको कल एक पत्र पोस्ट करवा दिया था। कुछ दिनों तक आपका मृदुल कर स्पर्श उसे प्राप्त होगा। अभी तो मार्ग की दूरिएं तह कर रहा होगा। पत्र तो फिर भी पाँच-छः दिनों में इतने लम्बे रास्ते पार कर लेता है। किन्तु आप और मेरे बीच की मार्ग दूरिएं कब समाप्त होंगी? यह प्रश्न अभी निश्चय के सोपान पर आया नहीं है। किन्तु इससे क्या? दूर से आने वाले पत्र समीप से होने वाली वार्त्ताओं से अधिक मधुर होते हैं। आज एक और मधुर पत्र आपके लिए लिख रहा हूँ। आज दिन भर तो कुछ लिखने का समय नहीं मिल सका। इसलिए रात्रि को लिखने बैठा हूँ। इस समय ६ बजे हैं। आकाश के प्राङ्गण में बादलों का खेल चल रहा है। रिम झिम हो रही है। वैसे भी लोग रात्रि को कम आते हैं दूर होने से। और आज तो बादलों की गड़गड़ाहट और बिजली की चकचकाहट में भक्त हृदयों का अत्यन्ताभाव

ही हो गया है। वातावरण में शान्ति का साम्राज्य छा रहा है। कम्पाउण्ड Compound में लगे बिजली के हाई पावर बल्ब से निर्दोष आलोक का लाभ मिल रहा है। नील आकाशमंडल में पवन के हलके-हलके झोंके चल रहे हैं। दिन भर की गरमी से पीड़ित अंगो को बड़े प्यारे-प्यारे लग रहे हैं। लेखनी में आज कुछ लिखने की उत्सुकता अधिक दिखाई दे रही है। खड़गपुर (बंगाल) के प्रथम अहिंसा सम्मेलन की झाँकी आपको आज दिखा ही देना चाहती है यह कलम। अहिंसा की अमर विभूति विश्व ज्योति तथा अमृत योगी भगवान महावीर की मंगल जयन्ती के उपलक्ष्य में दिनांक १८-१६-२० अप्रैल, १६७० को जैन संघ के तत्त्वावधान में रवीन्द्र इन्स्टिटयूट Ravindra Institute गोल बाजार के समीप त्रिदिवसीय अहिंसा सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में खड़गपुर की जनता ने निष्पक्ष मानस से भाग लिया। उनके लिए यह सम्मेलन खड़गपुर के इतिहास में प्रथम ही था। इसलिए सब के आकर्षण का वह केन्द्र बन गया।

यह सम्मेलन डा० जे० एस० एन० मूर्त्ति की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। और इसका उद्घाटन भी उन्हीं के कर-कमलों से किया गया। डा० जे० एस० एन० मूर्त्ति सच, स्नेह और श्रद्धा की एक मूर्ति ही हैं। आपका सत्संग, प्रेम अद्वितीय ही है। आपको गीता पर अधिकार तो है ही। किन्तु दूसरेधर्मों का भी आपको प्रयाप्त संबोध है। आपके निष्पक्ष तथा समन्वयवादी

हृदय ने आपको सर्व प्रिय सा बना दिया है। आपने इस सम्मेलन की शोभा को बढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और वे अपने प्रयास में सफल भी हुए। इस सम्बन्ध में बटुक भाई ठक्कर का नाम रह-रह कर स्मृति पटल पर उतर रहा है। आप एक विलक्षण ही दिव्य व्यक्ति हैं। "न काहु से दोस्ती और न काहु से वैर" वाली कहावत आपके वर्तमान जीवन पर लागू होती है। साधारण व्यक्ति को अव्यवहारी तथा शुष्क हृदय प्रतीत होते हैं। किन्तु उनकी विदेहता तथा अनासक्त हृदयता को ज्ञानी प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। आप वास्तव में सम्मेलन का जान-प्राण थे। आपने दिन-रात सम्मेलन को सफल बनाने के लिए जो बेजोड़ काम किया वह कभी भूलाया नहीं जा सकता। हम तो केवल सम्मेलन के प्रेरक थे किन्तु समस्त सम्मेलन की जिम्मेवारी बटुक जी के कन्धों पर थी। और आपने अपने दायित्व को पूरी इमानदारी से निभाया। नाम की इच्छा आप में बिल्कुल नहीं। कहीं पर भी आपने अपना नाम नहीं दिया। आपको नाम की अपेक्षा काम पर अधिक विश्वास है। गरजने वाले बादल से बरसने वाला ही श्रेष्ठ होता है। नाम न चाहने वालों का ही वास्तव में नाम होता है। और वह अमर भी रहता है। क्या ही अच्छा किसी शायर ने कहा है—

भागती फिरती थी दुनिया,
जब तलब करते थे हम।

ही हो गया है। वातावरण में शान्ति का साम्राज्य छा रहा है। कम्पाउण्ड Compound में लगे बिजली के हाई पावर बल्ब से निर्दोष आलोक का लाभ मिल रहा है। नील आकाशमंडल में पवन के हलके-हलके झोंके चल रहे हैं। दिन भर की गरमी से पीड़ित अंगो को बड़े प्यारे-प्यारे लग रहे हैं। लेखनी में आज कुछ लिखने की उत्सुकता अधिक दिखाई दे रही है। खड़गपुर (बंगाल) के प्रथम अहिंसा सम्मेलन की झाँकी आपको आज दिखा ही देना चाहती है यह कलम। अहिंसा की अमर विभूति विश्व ज्योति तथा अमृत योगी भगवान महावीर की मंगल जयन्ती के उपलक्ष्य में दिनांक १८-१६-२० अप्रैल, १६७० को जैन संघ के तत्त्वावधान में रवीन्द्र इन्स्टिट्यूट Ravindra Institute गोल बाजार के समीप त्रिदिवसीय अहिंसा सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन में खड़गपुर की जनता ने निष्पक्ष मानस से भाग लिया। उनके लिए यह सम्मेलन खड़गपुर के इतिहास में प्रथम ही था। इसलिए सब के आकर्षण का वह केन्द्र बन गया।

यह सम्मेलन डा० जे० एस० एन० मूर्त्ति की अध्यक्षता में आयोजित हुआ। और इसका उद्घाटन भी उन्हीं के कर-कमलों से किया गया। डा० जे० एस० एन० मूर्त्ति सच, स्नेह और श्रद्धा की एक मूर्ति ही हैं। आपका सत्संग, प्रेम अद्वितीय ही है। आपको गीता पर अधिकार तो है ही। किन्तु दूसरे धर्मों का भी आपको प्रयाप्त संबोध है। आपके निष्पक्ष तथा समन्वयवादी

हृदय ने आपको सर्व प्रिय सा वना दिया है। आपने इस सम्मेलन की शोभा को बढ़ाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। और वे अपने प्रयास में सफल भी हुए। इस सम्बन्ध में वटुक भाई ठक्कर का नाम रह-रह कर स्मृति पटल पर उतर रहा है। आप एक विलक्षण ही दिव्य व्यक्ति हैं। "न काहु से दोस्ती और न काहु से बैर" वाली कहावत आपके वर्तमान जीवन पर लागू होती है। साधारण व्यक्ति को अव्यवहारी तथा शुष्क हृदय प्रतीत होते हैं। किन्तु उनकी विदेहता तथा अनासक्त हृदयता को ज्ञानी प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है। आप वास्तव में सम्मेलन का जान-प्राण थे। आपने दिन-रात सम्मेलन को सफल वनाने के लिए जो वेजोड़ काम किया वह कभी भूलाया नहीं जा सकता। हम तो केवल सम्मेलन के प्रेरक थे किन्तु समस्त सम्मेलन की जिम्मेवारी बटुक जी के कन्धों पर थी। और आपने अपने दायित्व को पूरी इमानदारी से निभाया। नाम की इच्छा आप में बिल्कुल नहीं। कहीं पर भी आपने अपना नाम नहीं दिया। आपको नाम की अपेक्षा काम पर अधिक विश्वास है। गरजने वाले बादल से बरसने वाला ही श्रेष्ठ होता है। नाम न चाहने वालों का ही वास्तव में नाम होता है। और वह अमर भी रहता है। क्या ही अच्छा किसी शायर ने कहा है—

भागती फिरती थी दुनिया,
जब तलब करते थे हम।

जब से नफरत हमने की,
वह बेकरार आने को है।।

इस दुनिया का हर साधारण प्राणी माया के पीछे भाग रहा है किन्तु अपनी छाया के पीछे भागकर भी अपनी ही छाया को कौन पकड़ सका है ? किन्तु सूर्य की ओर मुँह करने से छाया स्वयं पीछे भागने लगती है। जो आत्माभिमुखी होकर जीवन में रहते हैं। नाम-रूपमय समस्त जगत उनका अनुगामी हो जाता है। किन्तु साधक को इस नश्वर मायावी जगत से कुछ प्रयोजन नहीं होता और वह इसके जाल में कभी अपने मन को फंसाता नहीं। बटुक भाई की इच्छा न होने पर भी मैंने दो शब्द उनके लिए लिख दिये हैं। भले ही कोई स्वयं प्रशंसा की कामना अपने दिल में न रखे। किन्तु दूसरों की जबान तथा लेखनी पर तो कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। दूसरों को प्रेरणा देने के लिए भी आदर्श का चित्रण भी शब्दों द्वारा करना पड़ता है। मौन-जीवन की भाषा प्रत्येक व्यक्ति नहीं पढ़ सकता। बटुक भाई सचमुच सम्मेलन के स्तम्भ थे। यदि यह कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी । इस प्रसंग के साथ-साथ दलीचन्द भाई मेहता, यादवजी भाई तथा कान्ति भाई सोमानी की सेवाएं कभी विस्मृत नहीं की जा सकतीं। इन महानुभावों ने अपने धन, श्रम तथा भावना का तेल डालकर अहिंसा सम्मेलन के दीप को प्रज्वलित किया । ताकि इस देश के हिंसा तिमिर को दूर किया जा सके । इस पावन

सुअवसर पर जिन हित तथा शुभ चिन्तक हृदयों ने अपने शुभ, मधुर, उत्तम तथा प्रेरक सन्देश प्रेषित किये। उनकी शुभ नामावली से इस पुस्तक के पृष्ठ कदापि रिक्त नहीं रह सकते। उनके सन्देश सम्मेलन के आयोजकों के लिए प्रेरक तथा उत्साह वर्धक तो बने ही साथ ही विचारों की अमूल्य निधिए भी प्राप्त हुई। इसके लिए मैं उन सब सन्तों का धन्यवाद करता हूँ। और आभार मानता हूँ। वैसे कर्त्तव्यशीलता धन्यवाद की भूखी नहीं होती। किन्तु फिर भी किसी के कर्त्तव्य के प्रति कर्त्तव्य को निभाना भी एक कर्त्तव्य बन जाता है। सन्देश प्रेषकों के मंगलमय नाम इस प्रकार हैं। आप भी ज़रा देखते जाइये।

(१) राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि
राष्ट्रपति सचिवालय, राष्ट्रपति भवन, दिल्ली-६
प्रेसिडेण्ट्स सैक्रेट्रेट, राष्ट्रपति भवन......
(२) मुनि श्री रघुवर दयाल जी म० कपूरथला, (पंजाब)
(३) मुनि श्री फूलचन्द जी 'श्रमण' लुधियाना, (पंजाब)
(४) जैनागम वारिधि श्री फूलचन्दजी म० 'पुप्फ भिक्खु' (गुड़गावाँ)
(५) मुनि श्री सन्तबालजी चींचण (थाना) (महाराष्ट्र)
(६) श्री फूलचन्दजी बाफना M. L. A. सादड़ी (राजस्थान)
(७) श्री देवचन्द अमोलकचन्द मेहता कतरासगढ़ (बिहार)
(८) श्री जौहरी लालजी खींचा ब्यावर (राजस्थान)
(९) श्री स्वामी भैरवानन्दजी चण्डीखोल (उड़िसा)

(१०) श्री रामरूपजी टाँक जयपुर (राजस्थान)

(११) श्री पद्म प्रकाशजी जैन करनाल (हरियाना)

(१२) श्री चन्दन मुनिजी म० बरनाला (पंजाब)

(१३) श्री ओमप्रकाशजी अग्रवाल मालेरकोटला (पंजाब)

(१४) मन्त्री श्री वर्धमान सेवक संघ सदर बाजार (देहली)

(१५) प्रेसिडेण्ट सैन्ट्रल लाजे दि थियोसोफिकल सोसाइटी
(**A. C. S. Chari Advocate, Calcutta-14**)

(१६) श्री खरैतीलालजी जैन सढौरा (हरियाना)

(१७) मुनि श्री नेमिचन्द्रजी म० सढौरा (हरियाना)

(१८) जैन संघ कामानी जैन भवन भवानीपुर, कलकत्ता-२०

तार द्वारा प्राप्त सन्देश

(१९) श्री हंसराज जी जैन, शिक्षापति जैन शिक्षा निकेतन बोर्ड लुधियाना (पंजाब)

(२०) केशवलाल खण्डेरिया प्रधान गुजराती जैन-संघ
२७ पोलोक स्ट्रीट, कलकत्ता-१

(२१) श्री अभयराज जी नाहर ब्यावर (राजस्थान)

(२२) मन्त्री श्री एस० एस० जैन सभा मुकेरियाँ (पंजाब)

(२३) गुजराती जैन-संघ, कलकत्ता-१

इतने ही सन्देश समय पर मेरे पास पहुँच सके। समय कम Short होने से दूर के बहुत से मनीषी मुनियों तथा श्रद्धालु जनता के सन्देश नहीं भी आ सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनकी शुभ कामनाएं तथा आशीर्वाद हमारे साथ नहीं थे।

व्यवहार निश्चय का द्योतक होता है किन्तु व्यवहार के विना भी कभी निश्चय रहता है। दूर-दूर से समय पर डाक का पहुँचना भो कभी ,कठिन हो जाता है। किन्तु फिर भी जो हमें सन्देश मिले उनसे सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं को उत्साह अवश्य मिला। दूर बैठे हुए भी इन महानुभावों ने अपना पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया। सन्त वृन्द तो समय पर दूर देश में पहुँच ही नहीं सकते। उनके तो सन्देश के दो शव्द ही मानों उनकी उपस्थिति के परिचायिक होते हैं। गृहस्थ वर्ग के साथ तो जीवन की अनेकों परिस्थितिएं तथा विवशताएं लगी रहती हैं। भावना रखते हुए भी नहीं पहुँच पाते। फिर ऐसी स्थिति में सन्देश पत्र ही उनके हृदय का सन्देश लेकर आते हैं। ऐसे सहृदय व्यक्ति बरबस दूसरों के धन्यवाद के पात्र बन जाते हैं।

सम्मेलन के मंगल अवसर पर कलकत्ता तथा अन्य नगरों के बहन व भाई भी पहुँचे। जिनकी उपस्थिति से सम्मेलन की शोभा में चार चान्द लग गये।

अहिंसा के विविध अंगों पर विचार प्रस्तुत करना तथा जनता को आचारिक अहिंसा की प्रेरणा देना ही इस सम्मेलन का प्रमुख प्रयोजन था। जैन मुनि, जैन धर्मानुयायी तथा अन्य महानुभव अहिंसा पर प्रायः बोलते ही रहते हैं। लोग प्रायः यह हो समझते हैं कि 'अहिंसा परमो धर्मः' तो बस जैनों की विरासत में आया है। अन्य धर्मों का वास्तव में इससे कोई

सम्बन्ध नहीं । यदि जैनेतर धर्म में अहिंसा की प्रधानता हो तो फिर जीवन में आमिषाहार आदि कुत्सित प्रवृत्तिएं प्रवेश कैसे पा सकती हैं ? या वे इन्हें अच्छा कैसे मान सकते हैं ? इधर के साधारण लोगों का ख्याल यह बना हुआ है कि अहिंसा हमारा तथा हमारे शास्त्रों का धर्म है ही नहीं। यह तो केवल जैनों के लिए है। और इन्हीं के शास्त्रों का विधान है । बस इन्हीं के तीर्थंकरों का यह फरमान है । जन साधारण की इस भूल भरी धारणा का निरसन करने के लिए भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के वरिष्ठ नेताओं को निमन्त्रित किया गया। ताकि वे अपने-अपने शास्त्रों के आधार पर अहिंसा के संबंध पर विचारों को अनमोल मणिएं जनता के आँचल में डालें। और उनको यह भली भाँति ज्ञात हो जाए कि अहिंसा केवल जैनों की थाती नहीं है बल्कि यह एक प्राकृतिक धर्म है और सारे विश्व के प्रत्येक प्राणी के जीवन की सुख शान्ति का मूल इसी में निहित है। संसार के प्रत्येक आस्तिक दर्शन की दो आँखें अहिंसा तथा सत्य ही हैं। बिना इसके प्रत्येक सम्प्रदाय एक उस अंधे पुरुष की तरह है। जिसका अनुकरण करने से कोई भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता । यह जीवन का तथ्य जनता के हृदय में उतारने के लिए विद्वद् वर्ग को सम्मेलन पर पधारने के लिए विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया। ताकि वे अपने-अपने मतानुसार अहिंसा पर अपने विचार उपस्थित करें। जिन विज्ञ-मस्तिष्कों ने अहिंसा मंच को सुशोभित किया।

उनके नाम आपकी जानकारी के लिए लिख रहा हूँ। जरा ध्यान दीजिए।

(१) श्री परमहंस परिव्राजक शाश्वतानन्द जी म० (ऋषिकेश)
(सनातन धर्म की ओर से)
(२) सरदार प्रताप सिंहजी (सिख धर्म के वक्ता)
(३) मौलाना अज़ीज़ुल हक साहिब (मुस्लिम मत की तरफ से)
(४) माननीय फादर जौन टर्नर तथा माननीय फादर ऐमिल गेल्डस एस० जे० (ईसाई धर्म के प्रतिनिधि)

विभिन्न मतों के इन प्रमुख वक्ताओं के अतिरिक्त अनेक अन्य विद्वानों ने अपने मूल्यवान विचारों से जनता को कृतार्थ किया। उनके नाम भी विस्मृत कदापि नहीं किये जा सकते हैं।

(१) पं० केदार नाथ शर्मा
(२) श्री सन्तोष सिंहजी
(३) कुमारी निर्मला तथा उर्मिला सोमानि
(सुपुत्रिएं श्री कान्ति भाई सोमानी, खड़गपुर पं० बंगाल)
(४) क्षितिज राय चौधरी (बलरामपुर)
(५) श्री रोहित मेहता (वाराणसी से)
(६) श्री श्री देवी मेहता (वाराणसी से)

अहिंसा सम्मेलन के उपर्युक्त योग्य प्रवक्ताओं ने अहिंसा के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला। श्री परमहंस परिव्राजक

शाश्वतानन्दजी ने कहा कि किसी का खून करना तो हिंसा है ही किन्तु किसी के प्रति बुरा सोचना भी हिंसा है। जब विचारों में हिंसा नहीं होगी तो वाचनिक तथा कायिक हिंसा का तो प्रश्न ही नहीं उठ सकता। किसी का किसी भी समय किसी भी स्थान पर किसी भी प्रकार का अहित सोचना, कहना तथा करना हिंसा है।

सरदार प्रताप सिंह जी ने गुरु ग्रन्थ साहिब की वाणी के आधार पर अहिंसा की पुष्टि की। और कहा कि एक आदमी जब दूसरे को मारता है तो वह चिल्लाता है, शोर मचाकर अपने भाई, बन्धुओं तथा मित्रवर्ग को बुलाकर इकट्ठा कर लेता है। शक्ति होने पर दूसरे से मुकाबला भी करता है और अपने—आप को बचाने की हर प्रकार की चेष्टा करता है किन्तु बेजबान पशु-पक्षी तो ऐसा कुछ नहीं कर सकते। भगवान के बनाये हुए खिलौनों को यदि हम बना नहीं सकते तो हमें तोड़ने का भी कोई अधिकार नहीं है। हिंसात्मक कर्मों से शान्ति चाहने वाले लोग बबूल के पेड़ से आम्र फल की याचना करने जैसी बात करते हैं। उन्होंने कहा –

जो गल काटे और का,
अपना रहे कटाये।
धीरे—धीरे नानका,
बदला कहीं न जाये।

उन्होंने अपने भाषण में लोगों को माँस, मच्छली तथा अंडा आदि तामस तथा राक्षसी भोजन को छोड़ने की बलवती प्रेरणा दी। उन्होंने कहा—

कुदरत के सब खिलौने हैं,
इनको मिटा न तू।
हाथ से और जबान से,
इनको सता न तू॥
पेट भर सकती हैं जब,
तेरा फक्त दो रोटिएं।
क्यों ढूँढता फिरता है फिर तू,
बेजबाँ की बोटिएं ? ॥

सरदार साहिब के पश्चात् मौलाना अज़ीज़ुल हक साहिब ने अपनी तकरीर शुरु की। उन्होंने अरशाद फरमाया कि कुरान शरीफ में हर ज़ीरुह पर रहम करने की तलकीने की गई है। कुरान शरीफ में कहा गया है कि जो दूसरों पर जुलम करता है, दूसरों की चीजें छीनता है, हक मारता है, वह अल्लाताला (परमात्मा) के हुकुम की अदूली करता है, उसे खुदा अज़ाब देता है और अकबा में उसे दोज़ख नसीब होता है। मौलाना साहिब ने यह भी कहा कि जब इन्सान खुद मुसीबत में फंस जाता है तो वह 'खुदावन्देकरीम' (ईश्वर) से रहम के लिए दुआ मांगता है। जो इन्सान अपने लिए खुदा से रहम की दुरखास्त (प्रार्थना) करता है वह इन्सान फिर दूसरों पर रहम

(दया) क्यों नहीं करता ? यह बात समझ में नहीं आती। उन्होंने मजीद कहा कि दर असल (वास्तव) में जो लोग कुरान की इस तालीम (शिक्षा) पर अमल (आचरण) नहीं करते वे ही काफिर हैं। वे सब दोज़ख (नरक) के मुस्तहक (अधिकारी) होंगे। फादर जौन टर्नर ने अहिंसा को विश्व का सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त कहा और बताया कि ईसामसीह ने कहा है कि—

Thou Shalt not kill and ye shall be a holy man unto me.

अर्थात् तू किसी को मत मार, तू मेरे पास एक पवित्र मनुष्य बनकर रह। इससे साफ ज्ञात होता है कि पवित्र वास्तव में वह ही है जो किसी को दुःख नहीं देता। किसी को मारता नहीं।

उन्होंने कहा कि ईसा से किसी ने पूछा कि यदि कोई आपके गाल पर एक थप्पड़ (चपत) लगाये तो फिर तुम क्या करोगे ? तो उन्होंने उत्तर दिया कि "मैं अपना दूसरा गाल भी उस मारने वाले के आगे कर दूँगा।" याद रखना चाहिये कि हिंसक की हिंसा का अन्त तो आएगा किन्तु अहिंसक की क्षमा तथा शान्ति का कभी अन्त नहीं होता। उन्होंने अन्त में कहा कि प्रेम और सेवा ही इस धरती पर ईश्वरीय वरदान हैं। केवल मनुष्य का इस धरती पर आना ही धरती का सौभाग्य नहीं है। सौभाग्य तो तब उदित होता है जब मनुष्य के साथ प्रेम तथा

सेवा भी धरती पर उतरते हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने जीवन की एक घटना का वर्णन भी किया। उन्होंने कहा—

"एक बार हम गाड़ी में किसी गाओं को जा रहे थे। अकस्मात् गाड़ी खराब हो गई और हमें रास्ते में ही रुकना पड़ा। समय रात्रि का था। अन्धेरा चारों ओर छा रहा था। लोगों का यातायात भी बहुत कम हो गया था। हम अपने घर तथा लक्ष्य दोनों से दूर ही थे। आधे रास्ते में हम एक विकट स्थिति में फंस गये थे। न आगे बढ़ सकते थे और न पीछे मुड़ सकते थे। गाड़ी को ठीक करने का पूरा प्रयत्न चल रहा था। किन्तु विफलता हमारी अशान्ति को और बढ़ाती जा रही थी। निराशा के क्षणों में प्रायः मनुष्य उस भगवान की ओर देखता है। हमने भी उधर आशा का आँचल फैलाया। हम शायद जीवन में उसकी आवाज को कभी नहीं सुनते किन्तु वह हमारे जैसों कृतघ्नों की अन्तर्ध्वनि को तत्काल सुनकर हमें दुःखमुक्त कर देता है। हमने ज्योंही परमात्मा को ओर आतुर नयनों से निहारा, झट एक गाड़ी और पीछे से आ निकली। उसने हमें परेशानी में देखा तो अपनी सेवा, प्रेम तथा सहयोग का आँचल हमारी ओर कर दिया। उस गाड़ी के ड्राइवर ने तथा अन्य सवारियों ने मिलकर हमारी गाड़ी को ठीक कर दिया। उन्होंने हमें कुछ खाने-पीने को दिया और प्रेमपूर्वक पहले वहाँ से विदा दी और स्वयं बाद में वहाँ से चले। कितनी दया! कितनी करुणा!! किसी के पास निश्छल तथा निष्काम भाव

से सेवार्थ हर्षचित्त से चले आना, वास्तव में दया भाव के बिना कदापि नहीं हो सकता। दया ही इस मनुष्य लोक की धायमाता है। सबकी पालन कर्त्री तथा सबकी धात्री है। आज भी उनकी निष्काम सेवा कभी स्मृति-पथ पर आती है तो मस्तक श्रद्धा से विनत हो जाता है। उन्होंने जेनता को व्यवहारिक अहिंसा के लिये प्रेरित किया। सम्मेलन पर आए संगीतकारों ने अपने अहिंसा की तानों से वातावरण को सुवासित कर दिया अहिंसा की सुगन्धि से। अहिंसा की इस धारा सम्पात वर्षा में दो बिन्दु भगवान महावीर के अहिंसा-उपदेश के मैंने भी अर्पित किए। तीनों ही दिनों पर जनता का उमड़ता हुआ सागर इस बात का ज्वलन्त प्रमाण था कि लोगों में अहिंसा की बात सुनने के लिए काफी उत्सुकता है। जिज्ञासा है। एक तीव्र लग्न है। लोगों ने जिस एकाग्रता, निष्ठा तथा एकतानता से प्रवक्ताओं की बात को सुना, उससे अनुमान होता है कि कुछ न कुछ अहिंसा के बीज उनकी मानस-धरती पर अवश्य पड़े ही हैं। बीज कभी न कभी अंकुरित होकर वृक्ष का रूप भी ले लेता है। एक वार तो समूचा वायुमंडल अहिंसा से तरंगित हो ही गया और जन मानस कई दिनों तक इस सम्बन्ध में चिन्तन-मनन करते रहे। उनकी बातचीत तथा चर्चा का यह सम्मेलन एक विषय बना रहा। अपने-अपने दृष्टिकोण से उन्होंने इस पर अवश्य कुछ न कुछ मन्थन किया। और एक दो कण इस विचार-राशि में से
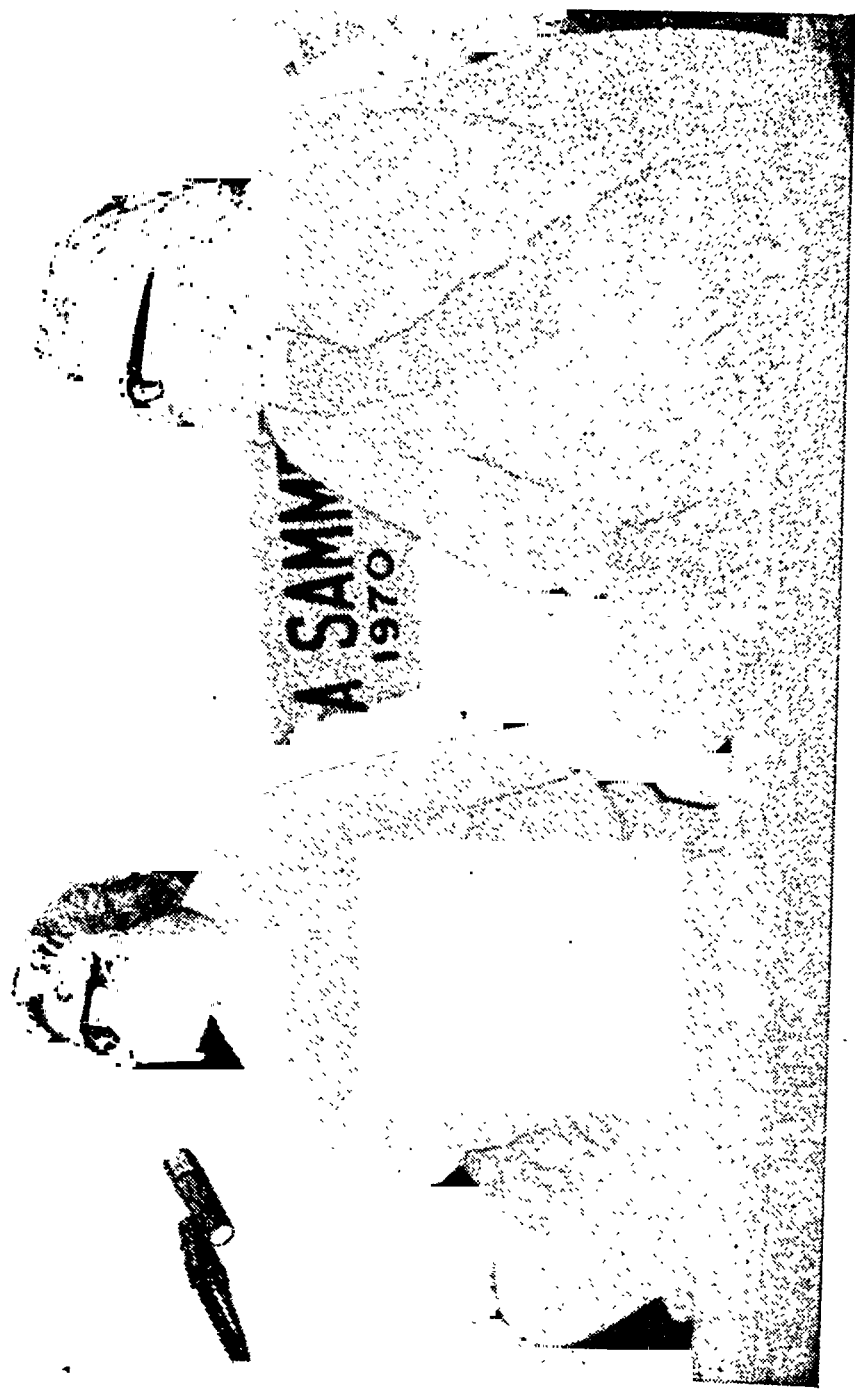
श्री मनोहर मुनि जी सम्मेलन पर संदेश देते हुए । श्री विजय मुनि जी चिन्तन मुद्रा में ।

जीवन में भी अवश्य उतारे होंगे। भले ही वे समस्त लहरें अब नहीं रहीं, किन्तु स्मृति-लोक में से उसकी स्मृतियों को दूर नहीं किया जा सकता। स्मृति कभी प्रकृति भी बन जाती है। इस आधार पर सम्मेलन को यदि देखें तो उसकी सफलता में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता।"

मेरे प्रिय बन्धु! सन्मेलन के बाद भी कुछ दिन वहाँ ठहरे ही। टाटानगर से शेषकाल पधारने की विनती मिली और उधर बालासोर (उड़ीसा) से भी।

टाटानगर वालों को तो टा० टा० कर दिया और उड़ीसा की ओर चलने का विचार बन गया। उन्हीं दिनों बालासोर में दो बहनों का वर्षीतप चल रहा था। उनकी ओर से भी विशेष आग्रह हुआ कि उस शुभ एवं मंगल अवसर पर आप अवश्य पधारने की कृपा करें। इसलिए अक्षयतृतीया पर पहुँचने के लिए हमने शीघ्र वहाँ से उड़ीसा की तरफ अपना मुँह फेर दिया। कटक श्री संघ की चातुर्मास की विनती ने हमारे पगों को पाँखें ही लगा दी। कटक के उत्साही श्री संघ ने ही हमें उड़ीसा की ओर आने तथा विचरने के लिए सच, अत्यधिक उत्साहित किया।

मैंने आपको खड़गपुर अहिंसा सम्मेलन की संक्षिप्त झाँकी दी है अपने इस पत्र में। 'खड़गपुर से कटक' तक यात्रा का विवरण आप अगले पत्र में पढ़ेंगे। अब रात्रि के ११ बज चुके हैं। नींद पलकों की अंक में भर रही है। बस, मेरी लेखनी भ

आराम करेगी और मैं भी। और इस पत्र को लिफाफा की गोद में विश्राम लेने के लिए रख दिया है।

श्रीराम मुनि तथा सतीश मुनिजी को यथा योग्य वन्दना कहें तथा सुखसाता पूछें। मेरे योग्य कोई सेवा हो तो निःसंकोच लिखते रहा करें। अपना ही तो हूँ।

मुनि मनोहर 'कुमुद'

भुवनेश्वर (उड़ीसा)

न पीछे हटाया क़दम को बढ़ा कर ।

अगर दम लिया भी तो मंज़िल पै जाकर ॥

—ताज मुनव्वर

★

अभी कोई मंज़िल नहीं तेरी मंज़िल ।

अभी पाये-मंज़िल बढ़ाता चला जा ॥

—जिगर

★

हमें राहे - तलब में,

ख़ाक हो जाने से मतलब है ।

कदम पहुँचे न पहुँचे,

मंज़िले - मक़सूद पर अपना ॥

—बर्क

उक़ाबी रूह जब बेदार होती है जवानों में ।

नज़र आती है उनको अपनी

मंज़िल आसमानों में ॥

—इक़बाल

★

पस्त-हिम्मत वोह हैं
राहे-शौक़ में जो रह गये ।
हौसले वाले के आगे,
दूर कुछ मंज़िल नहीं ॥

—अनवर

★

न हिम्मत हार ऐ मंज़िल के राही !
कि मंज़िल भी अब तेरी मुन्तज़िर है ॥

—अख़्तर

★

यहाँ नेकी-बदी दो रास्ते हैं,
ग़ौर से सुन ले ।
तुझे जाना है किस मंज़िल पै,
अपना रास्ता चुन ले ॥

—आज़ाद

★

खड़गपुर
से
कटक

पत्र !

(१)

भुवनेश्वर
(उड़ीसा)
८-७-७१

तपोमूर्ति श्री भद्र मुनि जी

मधुर-मधुर सुखसाता।

श्रद्धेय पूज्य श्री रघुवर दयालजी म० के चरण सरोजों में सभक्ति कोटि-कोटि वन्दना और सादर सुखेसाता की पुनः पुनः पृच्छा। आपको कल एक पत्र भिजवाया था। कुछ दिनों तक जालन्धर की गलिएं तथा बाजार देख सकेगा। फिर कहीं बांस बाजार स्थानक की सीढ़िएं चढ़कर आपके चरणों में पहुँच पायेगा। जो यहाँ से चल पड़ा है वह तो आपको मिलेगा ही। किन्तु जो यहाँ से उधर और उधर से इधर नहीं चल रहे, बस उनका ज़रा मिलना शीघ्र नहीं हो सकता। चल पड़ने पर तो कोई कभी न कभी मिल ही जाता है। समझे आप। अब आपके लिए खड़गपुर से आगे की विहार-यात्रा के नवीन पृष्ठ लिख रहा हूँ।

हमने अच्छी तरह सोच विचार कर उड़ीसा की ओर बढ़ने का संकल्प कर लिया था। और मन में एक चातुर्मास करने का भी निश्चय बन गया था। श्रावकों को जब पता लगा कि महाराज उड़ीसा की तरफ पधार रहे हैं, तो वे कहने लगे

"महाराज! आपने यह क्या सोचा है? आप इधर टाटानगर तथा आगे मध्यप्रदेश के अच्छे-अच्छे क्षेत्र छोड़कर उड़ीसा क्यों जा रहे हैं? वहाँ रखा ही क्या है? यहाँ से ८० मील दूर बालासोर में कुछ घर जैनों के मिलेंगे। और फिर कटक से पहले १२५ मील के बीच में कोई भी क्षेत्र नहीं है। न जैन न जैनों की छाया। उड़ीसा के लोग तो प्रायः आमिषभोजी हैं। आहार-पानी की समस्या बराबर बनी रहेगी। लोग जैन-सन्तों के आचार-विचार से प्रायः अनभिज्ञ हैं। कुछ जानते तक नहीं। आप क्यों मुसीबत में पड़ रहे हैं? इधर के लोग आपको बड़ी श्रद्धा तथा भावना से बुला रहे हैं। आप इनकी भावनाओं की उपेक्षा करके एक अनजाने प्रदेश की तरफ जा रहे हैं। कैसी विचित्र बात है?" कई दिनों तक जब इधर-उधर से ऐसी बेढंगी बातें मेरे कानों में आती रहीं तो मैंने फिर कहा कि "आप लोग यह कहते हो कि उड़ीसा में क्या है? जो आप उधर जा रहे हैं। तो मैं समझता हूँ जहाँ कुछ नहीं रखा, वहाँ कुछ बन सके, इस उद्देश्य से ही उधर जाने का विचार किया है। सूखी धरती को पानी देना और अन्धेरे में दीपक जगाना ही सार्थक होता है। बाकी रही कष्ट तथा परिसहों की बात, सो वह तो हृदय के मानने की चीज है। यह मन जिसे सहर्ष स्वीकार कर लेता है, वह दुःख होते भी सुख बन जाता है और जिसे यह नहीं चाहता, वह सुख भी इसके लिए दुःख का असह्य भार बन जाता है। और फिर साधु तो कष्ट सहन करने

के लिए ही बना है। शासन की प्रभावना के लिए और विश्व कल्याण के लिए यदि कुछ कष्ट भी सहन करने पड़ें तो मैं इसे अपना परम सौभाग्य ही समझूँगा। प्रथम बार तो कुछ तकलीफ हो सकती है किन्तु भविष्य के लिए मार्ग खुल जाने पर भावी पीढ़ी को इधर विचरने में कोई बाधा नहीं आएगी। क्या यह कम उपकार होगा ? आप केवल मोह तथा राग के कारण मुझे एक महान् उपकार के काम से वञ्चित कर रहे हो। क्या यह ठीक है ? उधर जाने में क्या लाभ है ? इसका उत्तर समय ही देगा। मैं नहीं दे सकता। इधर विचरण तो एक दो मुनियों ने किया है। स्वयं श्रद्धेय कवि श्री जी महाराज पुरी तथा कोणार्क तक इस धरती को पावन कर आए हैं अपने चरण कमलों की परिपूत रजः स्पर्श से। किन्तु हाँ, उनके जीवनोद्धारक चातुर्मास का सौभाग्य इस धरती को प्राप्त नहीं हुआ। हमारे जैसे जिन धर्म के तुच्छ सेवकों द्वारा यदि भावी सन्तति के लिए उड़िसा की धरती पर चातुर्मास के भव्य द्वार खुल जायें, तो यह कार्य हमारे जीवन का सर्वाधिक गौरवमय होगा।"

मैंने अपने अनन्य उपासकों को कहा कि "हम मुनिद्वय आप से इस सम्बन्ध में शुभकामना के इच्छुक हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आपकी दिव्य कामना तथा हार्दिक सहयोग हमारे साथ रहेगा तो हमारे जीवन-पथ पर कोई बाधा नहीं आएगी। सच, कदापि नहीं आएगी। मैंने उन्हें एक शेर सुनाते हुए कहा —

काट लेना हर कठिन मंज़िल,
का कुछ मुश्किल नहीं ।
इक ज़रा इन्सान में,
चलने की हिम्मत चाहिये ॥

आत्म-विश्वास तथा हृदय की उभरती हुई लग्न के सामने मार्ग की सब बाधाएं अपने आप मस्तक झुका देती हैं। प्रिय मुने ! सच कहता हूँ कि हमारे मन की दृढ़ता को देखकर हमारे उपासकों की बाधक भावनाएं साधक शुभ कामनाएं ही बन गई और हमने खड़गपुर से कटक की तरफ अपने कदम बढ़ा दिये । कदम–कदम चलते हुए अपने 'पगों के सहारे' अपनी मंज़िल पर एक दिन पहुँचे ही मार्ग की सब बाधाओं को पार करते हुए। वैसे तो जीवन में सुविधा-असुविधा सब धूप-छाया की तरह आती-जाती रहती है। साधक तो प्रत्येक स्थिति में समदृष्टि रहता है। किन्तु फिर भी जीवन–साधना की अलग-अलग भूमिकाएं हुआ करती हैं। किसी भूमिका पर दुःख सुख का भेद बना रहता है। और किसी स्थिति में उत्कट समभाव के सामने यह भेद समाप्त हो जाता है। सभी साधक-सन्त एक ही कोटि के तो नहीं होते। अतः पहले से प्रत्येक स्थिति का पर्यवेक्षण कर लेना कोई बुरा नहीं। समय पर परेशान होने की अपेक्षा धैर्य तथा सोच समझकर कदम उठाना कहीं अच्छा है। कहाँ कैसी सुविधा-असुविधा होती है ? कहाँ कैसा स्थान मिल सकता है ? कौन श्रद्धालु देव-हृदय श्रावक तथा सन्त

चरण रसिक आपको मार्ग में आपके थके चरणों को दो घड़ी के लिए सहला सकता है? कहाँ विधि अनुसार आपकी तृषा तथा क्षुधा को सान्त्वना मिल सकती है? आप कहाँ रहकर रातभर अपनी पलकों में अन्तस से न सोकर भी नींद को सुला सकते हैं? कहाँ बैठकर आप अपनी थकावट से चकनाचूर अंगों की थकावट उतार सकते हैं? इन सब बातों को जानकारी इधर के पथिक को पहले से होनी अत्यावश्यक है। आप यदि इस समय मेरे साथ होते तो फिर क्या ही अच्छा होता? मनुष्य की समस्त इच्छाएं भला कहाँ पूरी होती हैं? पूरी तो कोई एक ही होती है। शेष तो अधूरी ही रहती हैं। मेरे हृदय के अधूरे सपनों ने ही सच, मुझे आपके नाम ये पत्र लिखने के लिए बाध्य किया है। मैं हृदय से चाहता हूँ कि आप तथा अन्य मेरे समाज हितैषी तथा युग निर्माता बन्धु इस मार्ग को अवश्य अपने चरण संस्पर्श से पवित्र करें। आप तथा अन्य मेरे धर्म बन्धुओं के लिये स्थान तथा माइलेज़ की एक निर्देशिका दे रहा हूँ। इस पर आप जरा एकाग्र मन से दृष्टिपात कर लीजिए। यह विहार खड़गपुर जैन-स्थानक चान्दनी चौक से कर रहा हूँ—

ग्राम व नगर	मील	स्थान
(१) बेनापुर	६	भगवती राइस मिलज़
(२) नारायणगढ़	१०	डाक बंगला
(३) बेलदा	६	सत्यनारायण मन्दिर

ग्राम व नगर	मील	स्थान
(४) दान्तुन	११	गुजराती प्रा० स्कूल
(५) जलेश्वर (उड़ीसा)	११	जयन्ती भाई संघवी का मकान
(६) गुड़ीखाल (लगभग)	९	प्रभुदयाल गुप्ता (राजस्थानी)
(७) बस्ताग्राम	६	डाक बंगला
(८) हल्दीपदा (लगभग)	९	मारवाड़ी राइस मिल्ज़
(९) बालासोर (बालेश्वर)	१०	जैन-स्थानक
(१०) कूड़ा	५	प्राइमेरी स्कूल
(११) खन्तापाड़ा	८	एक राइस मिल्ज़
(१२) सोरो	१२	एक उड़ीया का मकान
(१३) मारकोणा	१२	डाक बंगला
(१४) चरम्पा	९	लक्ष्मीनारायण मन्दिर
(१५) भद्रक	३	सत्यनारायण मन्दिर
(१६) भण्डारी पोखरी	१३	हाई स्कूल
(१७) पानी कोयली	११	हाई स्कूल
(१८) बाराबाटी (लगभग)	१२	प्राइमेरी स्कूल

यहाँ से चण्डीखोल जाने के लिए नेबलपुर से High way को छोड़ देना पड़ता है। बाराबाटी से :—

(१९) चण्डीखोल	११	भैरवानन्द सन्यासी के आश्रम में

चण्डीखोल से वापिस लौटते समय वड़चना से रोड़ मिलता है।

ग्राम व नगर	मील	स्थान
(२०) धानमण्डल	४	एक मकान
(२१) बड़चना	२	डाक बंगला
(२२) छतिया	११	गेस्ट हाऊस
(२३) जगतपुर (लगभग)	१३	कोकोकोला फैक्टरी
(२४) कटक	६	जैन-भवन, काज़ीबाजार

आपके मृदुल चरणों को यह विहार पूरे २२० मील का करना होगा। खड़गपुर से बालासोर लगभग ८० मील है और बालेश्वर से कटक चण्डीखोल के रास्ते से १३० मील पड़ता है। नेवलपुर से हाई-वे छोड़कर चण्डीखोल जाने के लिए ६ मील भीतर जाना पड़ता है। सीधा कटक आने से १२ मील कम हो जाता है किन्तु आँखों को चण्डीखोल देखने का सौभाग्य नहीं मिल सकता इस तरह। इस स्थान की मनोरमता का चित्रण कुछ आगे चलकर लिखूँगा किन्तु अभी खड़गपुर से चण्डीखोल के बीच का विवरण दे रहा हूँ।

खड़गपुर से चलकर वेलदा में कुछ गुजराती लोहाना के घर मिलते हैं। ये जैन न होने पर भी श्रद्धा से आप्लावित हृदय रखते हैं। यहाँ रमेश चन्द्र जैन का एक घर है, जो भक्त तथा सन्त चरणोपासक है। आपके थके कदमों को कुछ

दिन का यहाँ विश्राम मिल सकता है। वेलदा से आगे है दान्तुन। यहाँ एक ही गुजराती भाई डायालाल हैं। जो भावुक तथा सहृदय हैं। एक दो दिन यहाँ सुविधापूर्वक ठहरा जा सकता है। इससे आगे जलेश्वर में जयन्ती भाई संघवी का मकान आपको ठहरने को मिलेगा। जलेश्वर से एक सड़क काँथी से होकर डीगा Deega को जाती है। इधर बंगाल में डीगा जलवायु की दृष्टि से एक स्वास्थ्यप्रद तथा आनन्ददायक स्थान माना जाता है। यह समुद्र के किनारे बसा है। विशेष बस्ती नहीं। कुछ रेस्टोरैण्ट यात्रियों के रहने के लिए बने हैं। लोग समुद्र, स्नान तथा नौका-विहार करने के लिए प्रायः यहाँ अवकाश के दिनों में आते रहते हैं। जलेश्वर से कुछ पहले सोना कनिया और बाईपटना से आधा मील आगे बंगाल की सीमा समाप्त होती है। और उड़ीसा की सीमा का श्रीगणेश होता है। जलेश्वर उड़ीसा में पड़ता है। जलेश्वर तथा राजघाट के बीच स्वर्ण-रेखा नदी पड़ती है। उन दिनों इस नदी का हृदय एकदम सूख रहा था। इस पर एक साधारण तथा कमज़ोर लकड़ी का पुल बना है। इस पर ट्रक तथा बैल गाड़िएं भी आती-जाती हैं। यहाँ के राजघाट के विश्राम-गृह में आपको विश्राम मिल सकता है। इससे आगे गुड़ीखाल, बस्ता तथा हल्दीपदा में रैन-बसेरा करते हुए आप बालासोर पहुँचेगे। हम खड़गपुर से काफी लम्बा विहार करके बालासोर आए थे। उन दिनों गरमी अपने पूरे यौवन पर थी। बंगाल की अपेक्षा

उड़ीसा में ग्रीष्म ऋतु की उष्णता कहीं अधिक होती है। यह हमारा उड़ीसा की धरती पर प्रथम प्रवेश था। इसलिए भी ग्रीष्मकाल के गरम-गरम साँसों ने एकदम संतप्त कर दिया शरीर के एक-एक अंग को। बालासोर पहुँचने पर हमें ग्रीष्मता का उपहार अपने पाओं के मोटे-मोटे छालों के रूप में मिला।

बालासोर ६०-७० हजार की जनसंख्या का एक शहर है इधर-उधर दूर-दूर तक फैला हुआ। उड़ीसा के १३ जिलों में से एक यह भी है। किन्तु शोभा, सौन्दर्य तथा स्वच्छता से विहीन। बाजार लम्बा तथा कुछ रौनक भरा है। यहाँ २५ के लगभग गुजराती जैनों के घर हैं और २-३ घर पंजाबी भाइयों के भी हैं। एक दो घर देहरावासी तथा ३-४ घर तेरह पंथी जैनों के भी यहाँ हैं। एक छोटा सा स्थानक यहाँ है गुजारे लायक। दो तीन साधु बड़े आनन्द से गुजारा कर सकते हैं। अधिक हो तो स्थानाभाव का संकट उपस्थित हो जाता है। हम तो दो ही सन्त थे इसलिए हमारे लिए इतना ही स्थान प्रयाप्त था। उड़ीसा में यदि स्था० जैनों का कोई क्षेत्र है तो वह बालासोर ही है। हमें यहाँ पहुँचने से पहले प्रेरणा मिली थी कि इस क्षेत्र को विशेष समय देकर प्रगति के पथ पर लाया जाए। हम इसी भावना को लेकर यहाँ गरमी के मौसम में उग्र विहार करके पहुँचे थे। किन्तु हमारी भावना साकार रूप नहीं ले सकी।

नया और अनजाना प्रदेश तथा क्षेत्र, आहार-पानी

की प्रतिकूलता, गरम-गरम लू की लहराती लहरें और विहार की उग्रता। इन सबने मिलकर मेरे लिए अस्वस्थ वातावरण की रचना की। ज्वर के प्रबल प्रहारों ने शरीर की नस-नस को कस दिया। हड्डी-हड्डी में पीड़ा आसन जमाकर मानों बैठ गई हो। ऐसा कुछ बेचैन मन महसूस करने लगा। प्रतिदिन १०६ तापमान Temperature श्रावक लोगों को चिन्ता तथा निराशा उत्पन्न कर देता था।

बाहर के तो केवल निमित्त मात्र ही होते हैं। वास्तव में दुःख-सुख तो जीव के अपने ही कर्मों का फल हैं। प्रकृति के नियमों के अनुकूल आचरण से सुख तथा प्रतिकूल व्यवहार से दुःख उत्पन्न होता है। मनुष्य निमित्त से राग द्वेष करता है, किन्तु वह इसके मूल को नहीं देखता, जो अपने दुःख सुख का कारण अपने ही कृत कर्म को मानता है, उसे किसी के प्रति राग द्वेष नहीं होता। उसमें समभाव रहता है। उसकी शान्ति अक्षुण्ण बनी रहती है। समभाव से ही बद्ध कर्मों की निर्जरा होती है और आश्रव का निरोध होता है। जीवन के प्रति एक यही चिन्तन उसे शान्ति दे सकता है।

अशुभ कर्मों का उदय जब शान्त होता है तो दुःखों का अपने-आप अन्त हो जाता है। किन्तु सम्यक् उपाय करने से कर्मों का प्रभाव शीघ्र कम होता है। बाल-पुरुषार्थ से कर्म बन्ध होता है तो पण्डित-पुरुषार्थ से कर्म की निर्जरा भी की जाती

है । यही जीव का पुरुषार्थवाद है । यदि ऐसा न हो तो फिर जीव का पुरुषार्थ ही निष्फल हो जाये । कर्म निस्सन्देह बलवान हैं किन्तु याद रखना चाहिये कि जीव का पुरुषार्थ कर्म से भी बलवान है । यदि ऐसा न हो तो जीव कर्म से कभी मुक्त नहीं हो सकता । कर्म की निष्पत्ति जीव के पुरुषार्थ से ही होती है और प्राक्रम से ही जीव कर्मों के प्रभाव को रोकता है, यदि कोई निकाचित कर्म उदय में आ जाये तो फिर भी उसका वेदन बिना वीर्य शक्ति के जीव नहीं कर सकता । बल्कि कर्म का उदय भी जीव के वीर्य विशेष से ही होता है । जैन-दर्शन में कर्म अवश्य प्रधान है किन्तु उससे भी अधिक प्रमुख है जीव का पुरुषार्थ । दुःख के समय में उससे मुक्ति पाने के लिए जो सम्यक् उपाय किया जाता है उसके पीछे आत्मा का यही प्राक्रमवाद का सिद्धान्त निहित है ।

मनुष्य के जीवन में प्रमाद के कारण जो रहन-सहन तथा खान-पान के विषय में प्रकृति के विरुद्ध आचरण हो जाता है उसका फल रोग के रूप में देर या सवेर में अवश्य जीवन में प्रकट होता है । प्रकृति अपने विरुद्ध कार्रवाई करने वाले को कभी क्षमा नहीं करती । भले ही वह संसार का कोई महापुरुष हो । प्रकृति का विधान सबके लिए बराबर है ।

रोग एक प्रकृति का दण्ड है । जो शरीर की शान्ति तथा स्वास्थ्य के लिए होता है । शरीर अपने भीतर अनावश्यक तत्व

को सहन नहीं करता। उसे वह बाहर निकालने का प्रयत्न करता है। वह ज्वर तथा अन्य किसी रूप में बाहर आता है। रोग से आक्रान्त व्यक्ति कभी-कभी इतना गड़बड़ा जाता है कि वह समझने लगता है कि यह रोग मुझे अवश्य मार देगा, किन्तु मैं कहता हूँ कि रोग तो भले ही किसी को न मारे किन्तु रोग का भय व्यक्ति को अवश्य मार देता है। मनुष्य को सदैव इस बात का विश्वास रखना चाहिए कि समय से पहले कोई नहीं मरता और जब समय आ जाता है तो फिर उसे दुनिया की कोई शक्ति बचा भी नहीं सकती। रोग के आने पर चिन्ता तथा हाय-हाय करना और धैर्य छोड़कर हो हल्ला मचाना व्यर्थ है। बाह्य उपचार शरीर में वात, पित्त तथा कफ के वैषम्य को दूर करके उसे समस्थिति में लाकर शरीर को अवश्य स्वास्थ्य प्रदान करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु इसके साथ मन की शान्ति, धीरज, आशा, विश्वास तथा मानसिक संतुलन की बड़ी आवश्यकता है। मनुष्य का सबसे बड़ा साथी उसका मनोबल है। इसके अभाव में बड़े से बड़ा भी उपचार व्यर्थ हो जाता है।

मुझे अपने रोग की इतनी चिन्ता नहीं थी। जितनी बालासोर श्रीसंघ को रहती थी। प्रतिदिन एक दो डाक्टर मुझे देखने के लिए आ ही जाते थे। डाक्टर जब देखेगा तो कोई न कोई औषधि भी अवश्य देगा। कुछ ही दिनों में मेरे सिरहाने दवाइयों की शीशियों के ढेर लग गये। मुझे औषधि में बिल्कु अनास्था भी नहीं है और अत्यधिक विश्वास भी नहीं है। असा

वेदनीय कर्म क्षय हो रहा हो और साता वेदनीय कर्म उदय में आ रहा हो तो बाहर का प्रत्येक उपाय सफल होता है। यह एक सुनिश्चित सिद्धान्त है। सम्यक् तथा अनुकूल उपचार अवश्य रोग की तीव्रता तथा अवधि को कम करता है। जैन धर्म का यह अटल विश्वास है कि सम्यक् पुरुषार्थ अवश्य कर्म के प्रभाव को रोकता है। यह ही एक तथ्य है जिससे प्रेरित होकर मनुष्य बाह्य साधनों का आश्रय लेता है। और ये बाह्य साधन उसके लिए कुछ क्षणों के लिए राहत की सृष्टि कर देते हैं।

मेरे उपचार के अन्तस्थल में यही एक रहस्य था। और श्री संघ की कर्त्तव्यपरायणता, आश्वासन तथा संतुष्टि का भी प्रश्न था। बालासोर श्री संघ ने अपने कर्त्तव्य का जी जान से पालन किया। उसने सेवा तथा उपचार में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी। मेरी बिमारी के कारण उनकी बढ़ती हुई व्याकुलता का ही यह फल था कि दिन में कितनी ही वार वैद्य तथा डाक्टरों का उपाश्रय में आना हो जाता था। मेरी अनिच्छा होने पर भी वे अपनी इच्छा की पूर्त्ति के लिए तथा अपनी आत्म-संतुष्टि के लिए बहुत कुछ कर रहे थे। जिसमें मैं कुछ हस्तक्षेप नहीं कर सका। इस सम्बन्ध में डा० गिरि की सेवाओं को कभी भुलाया नहीं जा सकता। जब भी उन्हें याद किया जाता था तभी वे हाजिर हो जाते थे अपने सौ काम छोड़कर भी। वैसे तो समस्त बालासोर श्री संघ ने तन, मन तथा धन से

मेरी सेवा की, किन्तु जसवन्त भाई अजमेरा, जयचन्द भाई गाँधी तथा महरचन्द जैन की सेवा विशेष रूप से स्मरणीय रहेगी। ऐसे ही श्रद्धामय हृदय शासनेश की कृपा तथा सन्त जनों की आशीर्वाद के पात्र हुआ करते हैं। ऐसे महानुभावों के निष्काम सेवाभाव को देखकर कहना पड़ता है कि यह धरती अभी भी धर्मनिष्ठ जीवनों से शून्य नहीं है।

मेरे सहयोगी श्री विजय मुनिजी के कन्धों पर ही सेवा का समस्त भार था। साधु की परिचर्या साधु ही कर सकता है। श्री विजय मुनिजी ने वृद्धावस्था होते हुए भी अपने कर्त्तव्य का प्राणपण से पालन और अपने भार का प्रसन्न मुद्रा से वहन किया। श्री संघ की निरन्तर तथा अद्वितीय सेवा तथा मेरे अपने असाता वेदनीय कर्म के उपशन से एक बार तो शरीर को रोग से मुक्ति मिली ही, किन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् बिमारी का दूसरा ज़ोरदार आक्रमण हुआ। जिसने रही-सही शक्ति को भी समाप्त कर दिया। पहले रोग से उठने के बाद मैं कुछ खाने-पीने लगा था और कुछ-कुछ शरीर में शक्ति आने लगी थी, किन्तु इस रोग के दूसरे हमला ने तो शरीर का मानों सब कुछ ही हरण कर लिया हो। कुछ ऐसा लगता था। उठना, बैठना, चलना, फिरना भी मुहाल था। किसी तरह शरीर रोग के साथ संघर्ष करता हुआ चल ही रहा था साँसों की पटरी पर। रात्रि दिन की अपेक्षा अधिक बेचैन रहती थी। इसके भी कई कारण थे। इधर कुछ अस्वच्छता अपने चरम-बिन्दु पर तो है ही। मच्छरों

का विशेष उपद्रव रहता है। यहाँ मच्छर भी इतने बड़े और मोटे हैं कि जो कभी देखने में भी कम ही आए हैं। जिनके एक ही उग्र दंश से शरीर में बड़े-बड़े छेद हो जाते हैं, और रक्त के स्रोत बहने लगते हैं मच्छरों के खून पीने के लिए। उड़ीसा में नदी-नालों की तो बहुलता है। वर्षा भी यहाँ अन्य प्रान्तों की अपेक्षा अधिक होती है। किन्तु स्वच्छता का इधर बहुत कम ध्यान रखा जाता है। उड़ीसा के लोग प्रायः मत्स्य भोजी हैं। इसीलिए मच्छली-पालन यहाँ का एक बहुत बड़ा व्यवसाय बने गया है। इसलिए यहाँ जगह बड़े-बड़े तालाब मिलते हैं। जिसे पोखर या पोखरी कहा जाता है। एक ही तालाब में स्नान, वस्त्र प्रक्षालन, जलपान तथा शौच आदि अनेकों काम किए जाते हैं। और फिर उनको कभी साफ तक भी नहीं किया जाता। पोखर के वक्षस्थल पर असंख्य मच्छरों के असंख्य रूप उत्पन्न होते हैं। वे संरक्षण एवं संवर्धन पाते हैं। और फिर रात्रि को निशाचर की तरह चारों ओर घूमते हैं। लोग इनके डर के मारे मच्छरदानी के किले में घुसकर सोते हैं। मनुष्य भले ही अपनी शक्ति का अभिमान करे छाती तानकर और सीना ठोक कर चले। भले ही वे बड़ों-बड़ों की ताकत को चुनौती दे चुका हो या देता हो। उसने अपने जीवन में चाहे कितने ही वीरों को परास्त किया हो। किन्तु उड़ीसा के मशक-दंशों से घबराया हुआ और भयभीत बना हुआ वह वीर अवश्य मच्छेरी के अन्दर छिपकर बैठता है। जो दुर्भाग्य

से मच्छेरी के कैम्प नही लगा सकते और जो इन कैम्पों से बाहर रहते हैं, उनको तो ये कमबख्त मच्छर कभी क्षमा नहीं करते उनका रक्त पिये बिना । उड़ीसा में आने वाले प्रत्येक नव-परदेसी को इन छापामार मच्छरों के तेज हमलों से बचने के लिए मच्छरदानी अवश्य अपने पास रखनी चाहिए और मच्छेरी में सोने की आदत भी बना लेनी चाहिये। तभी वह रात को चैन से सो सकता है । नहीं तो नहीं। मैंने तो जीवन में कभी मच्छरदानी का प्रयोग नहीं किया था। और न ही अभ्यास होने पर उसमें नींद आती थी। एक दो बार यह कैम्प लगाकर भी देखा । किन्तु यह प्रयोग उस समय फिट नहीं बैठा, किन्तु अब तो अभ्यास हो गया है । उत्ताराध्ययन सूत्र का 'परिसह' अध्ययन ऐसे समय में कुछ-कुछ मन को ढाढस अवश्य देता रहा। किन्तु शरीर का धर्म शरीर के साथ ही रहता है। मन किसी प्रतिकूल स्थिति को अनुकूल मानकर अवश्य शान्त हो जाता है किन्तु शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया तो अवश्य होती ही है।

रोग तथा मच्छरों के संयुक्त गुरिल्ला आक्रमणों ने शरीर की कृशता तथा विकलता को और भी अधिक बढ़ा दिया। कर्म-चक्र तो अपना प्रभाव दिखाकर मन्द पड़ गया। रोग ने अपने निर्दय पंजोंको आखिर ढीला करके शरीर को रोग मुक्त कर दिया। बिना घोषणा किए ही वह विदा हो गया। प्रकृति के अटल विधान के अनुसार सुख-दुःख चक्रनेमि की तरह

परिवर्तित होता रहता है। रोग तो अवश्य शान्त हुआ, किन्तु वह अपना चिन्ह दुर्बलता के रूप में छोड़ गया। धीरे-धीरे 'दुर्बल' से भी 'दुर्' दूर हो शरीर में बल का संचार होने लगा। और शरीर कुछ ही दिनों में पूर्व जैसी स्वस्थस्थिति में आ गया।

मैंने अपनी बिमारी के पैंतालीस दिन यहाँ काटे। इसलिए बालासोर क्षेत्र सदैव मेरी स्मृति का विषय बना रहेगा। सुख के साथी तो कई मिल जाते हैं, किन्तु दुःख का साथी तो कोई ही होता है। बालासोर दुःख के दिनों में मेरा सच्चा साथी बनकर रहा है।

मेरे स्वस्थ होने पर सबको प्रसन्नता हुई। किन्तु मुझे एक बात का अभी तक भी खेद है कि मैं अपने उपदेशों का लाभ क्षेत्र को नहीं दे सका। हम जिस पावन उद्देश्य को लेकर बालासोर आए थे वह उद्देश्य साकार नहीं हो सका। यदि कभी दो चार प्रवचन पहले हुए भी तो वे लम्बे काल तक चल नहीं सके। हाँ, मेरी सेवा का क्षेत्र को अवश्य लाभ मिला, किन्तु प्रवचनों का विशेष नहीं। मैं अपने ऋणको सच, चुका नहीं सका।

स्वस्थ हो जाने के बाद दो चार व्याख्यान अवश्य फिर हुए। किन्तु वे भी अधिक दिन तक नहीं चल सके क्योंकि चातुर्मास का समय निकट आ रहा था। और हमने चातुर्मास के लिए कटक पहुँचना था। इसलिए अधिक दिन रुकना भी कठिन था। ऐसा लगता था कि मैं केवल विहार के लिए ही स्वस्थ हुआ था।

और बालासोर आया था अपने कष्ट के दिन काटने के लिए। क्षेत्र को कुछ पानी देने के लिए नहीं। इसके पीछे हमारी विवशताओं का दोष था। हमारी भावनाओं का नहीं। वैसे स्थानक को चहल-पहल बनाये रखने के लिए श्री विजयमुनिजी प्रतिदिन प्रातः प्रार्थना चलाते थे। एक दिन—

ॐ श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथाय नमः

मन्त्र का अखण्ड जाप भी रखा गया। जो बहुत ही सफल रहा। हमारी उपस्थिति में जैन बालशाला का वार्षिक उत्सव का आयोजन भी किया गया, जिसमें बालक-बालिकाओं ने रंगा-रंग के मनोरंजक कार्यक्रम देकर बालासोर की जनता का मन मुग्ध कर दिया। ऐसे तो सन्तों के आने से समाज में कुछ जाग्रती आती ही है। किन्तु जो कुछ हम आशाएं लेकर आए थे, वे सब पूरी न हो सकीं। इसका अभी तक भी मेरे मन में खेद है।

कटक चातुर्मास की स्वीकृति हमने बालासोर आकर ही दे दी थी। चातुर्मास में दिन कम ही रह गये थे। ऊपर से बरसात शुरु होने जा रही थी। इधर उड़ीसा में वर्षा कुछ पहले ही आरम्भ हो जाती है। इसलिए हम बालासोर को जल्दी नमस्ते कहकर आगे बढ़ना चाहते थे। किन्तु श्री संघ के अत्याग्रह करने पर केवल 'चान्दीपुर' देखने के लिए रुक गये एक दो दिन के लिए। कार्यक्रमानुसार एक दिन हम चान्दीपुर देखने के लिए गये।

चान्दीपुर बालासोर से ६ मील दूर समुद्र के किनारे पर है। चान्दीपुर भारतीय सरकार का एक विशेष स्थान है जो विशेष प्रयोजन के लिए है। जिसके सम्बन्ध में सविस्तार नहीं लिख सकता। वैसे वहाँ समुद्र का नज़ारा बड़ा मनोहारी तथा आनन्ददायक है। हम वहाँ सागर के किनारे बने एक बंगला में ठहरे थे। आस-पास रेत के पहाड़, सामने ठाठें मारता हुआ सागर का विस्तृत हृदय-प्राङ्गण। शीतल पवन के शीतल झोंके, ये सब हृदय को एकदम आनन्द-विभोर कर देते हैं। एकान्त का सच्चा आनन्द वहाँ उठाया जा सकता है।

यहाँ समुद्र का पानी अधिक गहरा नहीं है। दूर-दूर तक लोग उसमें स्नान करने के लिए चले जाते हैं। समुद्र का पानी दिन-रात में कई बार १०-१२ मील पीछे हटकर फिर आगे बढ़ता है। चान्दीपुर सागर की यही विचित्रता है। यह सब कुछ चान्द की किरणों के आकर्षण तथा विकर्षण से सम्बन्ध रखता है। वैज्ञानिक ही इस तथ्य को समझते हैं और वे ही इस रहस्य को समझा सकते हैं। साधारण लोग प्रकृति की प्रत्येक विचित्रता को ईश्वर की लीला समझकर केवल आश्चर्य ही किया करते हैं। गरमी के मौसम में भी यहाँ इतनी ठंढक होती है कि रात को एक मोटा कपड़ा ओढ़कर ही आप यहाँ सो सकते हैं। वह भी कमरे में, बाहर नहीं। कुछ समय भी यदि आप बाहर बैठ जाएंगे तो तेज हवा जब चलेगी तो आप पर बालू की वर्षा होने लगेगी। यदि आप सच सहृदय हैं तोआपको

इसमें भी आनन्द ही आएगा। रात्रि को सागर का केवल गर्जन ही आपको सुनाई देगा। यदि आप एक कलाकार हैं तो सागर के किनारे बैठकर और समुद्र के हृदय से हृदय मिलाकर आप अपनी कविता, किसी लेख तथा अन्य किसी संकल्प-पुँज की सफल सृष्टि कर सकते हैं।

हम एक ही रात वहाँ ठहरे। अगले ही दिन हम वापिस स्थानक में आ गये। और एक दिन विश्राम लेकर कटक की ओर प्रस्थान कर दिया। रविवार का दिन था। विहार के समय जन-समुदाय भी अच्छा-खासा जमा हो गया। ये समस्त श्रद्धालु कदम हमारे कदमों के साथ-साथ चलते हुए एक मंज़िल तक ही हमारे साथ आए। किन्तु आखिर घर-गृहस्थी के बन्धन में बन्धे हृदय मुक्त हृदयों के साथ कितनी दूर तक जा सकते हैं। साँझ होते ही वे सब अपने-अपने घरों को ओर और हम रात्रि भर विश्राम के क्षणों में रहकर प्रभात की पहली किरण के साथ अपनी अगली मंज़िल की ओर बढ़ गये। पग-पग आगे बढ़ते हुए हम खन्तापाड़ा पहुँचे। वहाँ बालासोर के भूरा भाई की परचून की दूकान है। तथा एक जैन का राइस मिल्ज़ भी है। वहाँ हम एक रात ठहरे। खन्तापोड़ा के मार्ग में नीलगिरि पर्वत की चोटिएं आपका दूर से दर्शन करती हुई नज़र आएंगीं। यह उड़ीसा का नीलगिरि है। सड़क से ९ मील दूर सड़क पर लिखे बोर्ड के अनुसार। फिर आए हम सोरो। मार्ग में तेरह पंथी मुनि श्री बुद्धमलजी

से भेंट हुई। जो कलकत्ता चातुर्मास के लिए जा रहे थे। और हम कलकत्ता चातुर्मास करके आ रहे थे। इसलिए तो कहा जाता है कि—

यह दुनिया अजब सराय है।
इक आए है इक जाए हैं॥

वे चार साधु थे। अग्रगामी बुद्धमलजी थे। दो-तीन मिनट सड़क के एक ओर एक वृक्ष के नीचे खड़े होकर बाइस-तेरह ने व्यवहारिक सुख साता का शिष्टाचार पूरा किया। फिर वे अपनी राह पर और हम अपने पथपर। चलो इतना ही सही। आँखें मिलीं, हाथ मिले और मिले एक दूसरे के वचन परस्पर। इस तरह कभी समय आने पर मन भी मिल सकते हैं। क्योंकि नियम है कि विघटन तो शीघ्र हो जाता है किन्तु संगठन तो धीरे-धीरे सौभाग्य से ही होता है। सोरो से चलकर मारकोणा में एक रैन बसेरा किया और फिर चरम्पा में क़दम रखे हमने।

चरम्पा जैनों का कभी बहुत बड़ा केन्द्र था। भुवनेश्वर संग्रहालय में कुछ जैन प्रतिमाएं हैं जो प्रायः इस क्षेत्र से उपलब्ध हुई हैं। चरम्पा में अब जैन का एक ही घर है। यहाँ से भद्रक केवल ३ मील है। यहाँ सत्यनारायण के मन्दिर में आपको ससम्मान स्थान मिल सकता है। श्री रमणीक भाई मेहता तथा चन्दूभाई देसाई यहाँ अच्छे भावुक तथा धर्मप्रेमी गुजराती भाई हैं। हम चार दिन की चान्दनी यहाँ बिताकर आगे बढ़े थे। प्रवचन

में संख्या संतोषजनक हो जाती है। यहाँ का चन्दन बाजार प्रसिद्ध है। बरसात यहाँ आरम्भ हो गई थी। दो दिन लगातार पानी बरसता रहा। मौसम ठीक होने पर हमने कटक की ओर कदम बढ़ा दिये। भद्रक से निकलते ही सालन्दी नदी। आपका उछलते हृदय से स्वागत करेगी। भद्रक तथा भण्डारी पोखरी के बीच छोटी-मोटी कई नदिएं पड़ती हैं। भण्डारी पोखरी तथा पानीकोयली के मार्ग में आपको वैतरणी नदी मिलेगी। यह उत्कल की वैतरणी नदी है। नरक की नहीं। इस पर तो फिर भी गुजरने के लिए आधा मील का पुल है किन्तु यमद्वार की वैतरणी नदी पर शायद कोई पुल अभीतक नहीं बनाया गया। वहाँ गोते खाने के सिवाय सच, कोई चारा नहीं। वर्ष में एक दिन लोग इसके किनारे समूह रूप में स्नान करते हैं। उनका विश्वास है कि इसमें स्नान करने से जीवन भर के सब पाप धुल जाते हैं और प्राणी सीधा स्वर्ग में पहुँच जाता है। किन्तु जैन धर्म का ऐसा कुछ विश्वास नहीं। वह पानी का और मन के पाप का कुछ सम्बन्ध नहीं मानता। मन के पाप तथा पुण्य का सम्बन्ध भावना से है, पानी से नहीं। अशुभ भावना से पाप का उपार्जन होता है और वह शुभ भावना से साफ भी हो जाता है। रूढ़ि, अज्ञान तथा परम्परा के वश होकर मनुष्य अनेकों प्रकार की गलत प्रवृत्तिएं करता रहता है। और मन में यह समझता है कि मैं बहुत बड़ा धर्म कर रहा हूँ, भक्ति कर रहा हूँ और अपनी आत्मा के सब पापों को दूर हटाकर अपने जीवन को शुद्ध बना

रहा हूँ। इसी का नाम मिथ्यात्व है। जब तक जीव में मिथ्यात्व रहता है तब तक उसे जीवन की ठीक दिशा नहीं मिलती। देव, गुरु तथा धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझने के बाद ही मिथ्यात्व जाता है और तब सम्यक् चरित्र का उदय जीवन में होता है। 'किसी नदी विशेष में स्नान करने से पाप धुल जाते हैं' ऐसा मिथ्या विश्वास एक सम्यक् ज्ञानी कभी नहीं करता। जैन धर्म स्नान आदि क्रिया को एक लौकिक कर्म समझता है, आध्यात्मिक नहीं।

पानीकोयली से बाराबाटी के रास्ते में एक नदी है खरसुआँ। जिस पर दो फर्लाङ्ग का पुल दो किनारों को परस्पर जोड़ रहा है। उड़ीसा सच, नदी नालों का देश है। धरती जल से सदा आप्लावित रहती है। किन्तु फिर भी शस्यश्यामला नहीं है। कुछ भूमि तो पानी की बहुतायत होने से कल्लर तथा दलदलमयी हो जाती है, जो खेती के आयोग्य ही रहती है। यहाँ का किसान बड़ा गरीब है। वैज्ञानिक कृषि-साधनों से विहीन। पानी का कोई सदुपयोग नहीं। कहीं दूर-दूर तक जंगल ही जंगल है। ज़मीन एकदम विरान। घास बड़ी छोटी-छोटी। गाय तथा बकरी के खाने के लिए भी धरती यहाँ की घास नहीं दे पाती। पंजाब की बकरी और उड़ीसा की गाय बस एक समान ही समझिए। कोई ही गाय यहाँ अच्छी मिलेगी। प्रायः दुबली-पतली और चलता-फिरता हड्डियों का एक ढाँचा मात्र ही मालूम होती है। यहाँ की साधारण गाय के चार स्तनों

से चार पाव दूध भी किसी भाग्यशाली को मिल सकता है। उड़ीसा की धरती माता तथा गऊ माता एक गरीब की निर्धन माँ की तरह है। यहाँ साधनों का अभाव नहीं। विकास का अभाव है। और अभाव है विकास के लिए ठोस योजना बद्ध कार्य-क्रम का। हम इस प्रकार इस प्रदेश की नाड़ी-नाड़ी देखते हुए चण्डीखोल पहुँचे।

चण्डीखोल जाने के लिये बाराबाटी से आगे नेबलपुर से हाईवे को छोड़ देना पड़ता है। चण्डीखोल यहाँ से ११ मील है। बीच में एक ब्राह्मणी नदी बाँहें पसारे पड़ी है। उसके विशाल वक्षस्थल पर दो हजार फीट लम्बा पुल बना है। चण्डीखोल के पास से एक सड़क पाराद्वीप को जाती है। पाराद्वीप बन्दरगाह है। जो नव-निर्मित है। चण्डीखोल से यह ५५ मील के लगभग है।

उड़ीसा में चण्डीखोल भी एक कमनीय स्थान है। इधर के पद-यात्री का चण्डीखोल सच एक महत्त्वपूर्ण आकर्षण है। यह स्थान पर्वत की दो कन्दराओं में बना है। कन्दरा को खोल कहा जाता है। चण्डी भगवती का यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। इसलिए इस स्थान को चण्डीखोल कहा जाता है।

संसार में प्रत्येक व्यक्ति, स्थान तथा वस्तु का अपना-अपना प्रभाव होता है। एक व्यक्ति के पास बरसों रहकर भी मन भरता नहीं और एक क्षण भी उससे दूर जाने को दिल नहीं करता।

और एक व्यक्ति ऐसा भी होता है जिसके साथ कुछ घड़ियाँ काटनी भी कठिन हो जाती हैं। एक को आँखें पी लेना चाहती हैं और दूसरे को देखना तक भी नहीं चाहतीं। ठीक इसी तरह प्रत्येक स्थान का अपना अलग-अलग प्रभाव होता है। एक स्थान ऐसा भी होता है, जहाँ कदम रखते ही हृदय क्षुब्ध हो जाता है। दो चार घण्टे भी वहाँ रहना दूभर हो जाता है। दिल वहाँ से भागने को करता है। वहाँ से आने के बाद उसकी स्मृति तो क्या, उसका नाम तक भूल जाता है। कोई-कोई स्थान ऐसा सुन्दर तथा मनोहर होता है और मन वहाँ इतना रम जाता है कि उसे छोड़ने को हृदय तैयार नहीं होता। वहाँ से आ जाने पर भी उसकी मंजुल स्मृति हृदय-तल से उतरती नहीं और मन वहाँ जाने के लिए पुनः पुनः उत्कण्ठित होता है। किसी का इस स्थान के सम्बन्ध में क्या अनुभव है ? यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु मेरा अपना अनुभव है कि यह स्थान मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अति लाभप्रद है। यह एक ऐसा शान्त-एकान्त स्थान है कि आँख जब इसे एकबार निहार लेती है, तो वह इसे बार-बार देखने के लिए अवश्य लालायित होती है।

चण्डीखोल तो अच्छा है ही। किन्तु इसके प्राण देवता का जीवन तथा व्यवहार उससे भी कहीं अच्छा है, जो प्रत्येक दर्शक को मोह लेता है। कई स्थान तो अच्छे होते हैं किन्तु वहाँ के व्यवस्थापक या स्वामी का स्वभाव अच्छा नहीं होता। स्थान सुन्दर तथा लाभप्रद होने पर भी हृदय वहाँ जाने के लिये उत्सुक

नहीं होता। चण्डीखोल के स्वामी भैरवानन्द भी एक अच्छे कुशल व्यवहारी ब्रह्मचारी साधक हैं। आपकी आयु साठ के आस-पास होगी। किन्तु शरीर में तेज, कान्ति तथा शक्ति का भण्डार खूब भरा है। वभूति के आवरण से आच्छन्न शरीर से भी तेज छनकर बाहर निकलता है अभी भी। मधुर स्वभाव का आकर्षण तो सबको बान्ध ही लेता है। वास्तव में स्वयं स्वामीजी ही चण्डीखोल का प्राण हैं। इस स्थान के बारे में स्वामीजी से जो जानकारी मिली है, उसके आधार पर कुछ लिख रहा हूँ।

वर्त्तमान चण्डीखोल की कहानी ३८ वर्ष पहले से शुरु होती है। उस समय यह एक निबिड़ जंगल था। सिंह, चीते, हाथी तथा अन्य हिंस्र प्राणियों का यह आवास स्थान था। दिन के समय भी कोई इसमें से गुजरने का साहस नहीं कर सकता था। रात को तो यहाँ रहने की हिम्मत किसीकी नहीं हो सकती थी। केवल भील लोग शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर इसमें से आखेट क्रीड़ा के लिए आते थे। इस जंगल में एक वृक्ष के नीचे कच्चे चबूतरे पर चण्डी की मूर्त्ति तथा अन्य कई मूर्त्तिएं थीं। जिसकी ये लोग पूजा करते थे। ये मूर्त्तिएं यहाँ कबसे हैं? यह कुछ ज्ञात नहीं होता, क्योंकि मूर्त्तिओं पर उत्कीर्णाक्षरों को पढ़ा नहीं जा सकता। वे मूर्त्तिएं आज भी इस नव-निर्मित चण्डीखोल के मन्दिर में स्थापित हैं। स्वामी भैरवानन्दजी एक शान्त-एकान्त स्थान की खोज में थे, जहाँ बैठकर कुछ साधना की जा सके। किसी ने आपको कहा "कि चण्डीखोल के जंगल में यदि आप

रहना चाहें तो वहाँ एक कुटिया बनाई जा सकती है।" आपने जगह देखी तो आप के मन को पसन्द आ गई। एकान्तता के प्रेमी तो आप थे ही। आपकी इच्छानुसार यहाँ एक कुटिया बना दी गई। और आपने अकेले ही इस बियाबान जंगल में रहना शुरु कर दिया। शेरों के जंगल में तो कोई शेर ही रह सकता है। आप शेरों की तरह शेरों के बीच रहने लगे और चण्डी की पूजा-अर्चना में आपका समय बीतने लगा।

आपकी लगभग चालीस वर्ष की साधना का यह फल है कि एक भयानक जंगल अब धरती का एक स्वर्ग बन गया है। जहाँ कोई जाना नहीं चाहता था, अब वहाँ जाकर कोई आना नहीं चाहता।

यहाँ अब भगवती चण्डी का एक दिव्य मन्दिर है। जिसकी एक-एक ईंट पर राम ही राम लिखा है। जिधर देखो राम ही राम नजर आता है। ऐसा लगता है कि आप किसी राम के लोक में खड़े हैं। एक बार तो राम की पावन स्मृति आ ही जाती है। यदि पवनपुत्र हनुमानजी की तरह यह राम हृदय में अंकित हो जाये तो फिर कहना ही क्या। जीवन-नैया पार होने में तनिक भी देर न लगे।

एक ओर रानी सती का भव्य मन्दिर है। दूसरी ओर सन्त कुटीर है। ऊपर जाकर भैरवानन्द जी की अपनी चालीस साल पुरानी जगह पर बनी एक नयी कुटिया है। बस कुटिया

ही। कोई महल उन्होंने नहीं बनाया अपने लिये। एक कक्ष में भोजनशाला। जहाँ से प्रत्येक वहाँ रहने वाले यात्री को सप्रेम भोजन दिया जाता है। यात्रियों के ठहरने तथा नहाने-धोने की पूरी व्यवस्था है। ऊपर पहाड़ी पर हनुमानजी का मन्दिर है। स्वास्थ्य के लिए यह स्थान अद्वितीय है। इस चण्डीखोल का सर्वश्रेष्ठ आकर्षण केन्द्र तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है इसके हृदय में बना हुआ सुन्दर जलाशय। मीठे पानी का झरणा यहाँ अज्ञात समय से निरन्तर बह रहा है। यह ही वह झरणा है जिसने स्वामी जी को इस पर्वत कन्दरा में कुटिया बनाने के लिए आकर्षित किया। झरणे के मधुर व शीतल जल को दो सिंहद्वारों से जलाशय में गिराया गया हैं। चण्डीखोल का वास्तव में यही प्राण है। उड़ीसा की जनता के लिए यह अब सैर व मनोरंजन का स्थान बनता जा रहा है। अवकाश के क्षणों में लोग यहाँ आते हैं। कुछ घूमते-फिरते हैं। तालाब में तैरते हैं। खाते-पीते हैं और शामको अपने घरों को वापिस चले जाते हैं। पाँच-सात कारें तो चण्डीखोल की कन्दरा में प्रायः खड़ी ही रहती हैं। हम एक सप्ताह यहाँ ठहरे थे। चण्डीखोल पहुँचने पर कटक से रविवार के दिन लगभग २०० बहन-भाई दर्शनार्थ यहाँ आए। एक प्रवचन का दोपहर के समय यहाँ आयोजन किया गया। चण्डीखोल में शायद जैन-मुनियों का यह प्रथम ही प्रवचन था।

हम एक दो दिन का ही विचार लेकर यहाँ आए थे, किन्तु स्थान की उपयोगिता तथा मनोरमता ने हमें पूरा एक

सप्ताह यहाँ रोक लिया । तीनों ओर ऊँचे-ऊँचे पहाड़। दूर तक नजर आनेवाली हरी-हरी घास और वृक्षों की पंक्तिएं ठण्डी-ठण्डी पवन यह सब मिलकर हृदय को बरबस मोह-मुग्ध कर देते हैं। सायं प्रातः भगवद्नाम की संकीर्तन-ध्वनि हृदय को और भी आनन्द विभोर कर देती है। वृक्षों की टहनियों पर उछलते-कूदते हुए लंगूरों तथा बानरों को देखने में आपके घण्टे भी क्षणों में बीत जायेंगे। 'आत्मवत् सर्वभूतेषू' का अभ्यास यहाँ अच्छी तरह किया जा सकता है। साँप तथा काले-काले बिच्छु यहाँ मिल सकते हैं। किन्तु डरिये मत यदि आपको—

'अहिंसा प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैर त्यागः'

इस पातञ्जल सूत्र पर दृढ आस्था है तो ये आपके साथ मित्रवत् क्रीड़ा ही करेंगे। चण्डीखोल की दूसरी ओर डेढ़ मील दूर महाविनायक मन्दिर है । यह मन्दिर भी ऐतिहासिक एवं प्रसिद्ध है ।

एक सप्ताह के बाद हम चण्डीखाल से बाहर निकले । स्वामीजी का तो कुछ दिन और रुकने का अत्याग्रह रहा; किन्तु चातुर्मास का प्रश्न था, रुकते भी कैसे। वर्षा अपने पूरे यौवन पर आ रही थी। चण्डीखोल के बाद धानमण्डल तथा बड़चना को पार करते हुए हम 'छतिया' के विश्राम गृह Rest-House में आकर ठहरे। गाम में प्रवेश करते ही छतिया मंदिर Chhatia temple के दर्शन होते हैं। यह जगन्नाथजी का

मन्दिर है। सायं समय हम मन्दिर देखने के लिए गये। यह मन्दिर काफी पुराना तथा विशाल है। द्वार पर सिंह, हाथी तथा घोड़े की पाषाण-मूर्तिएं आँखों को बरबस खींच लेती हैं। मन्दिर के बाहर ऊपर की ओर चारों तरफ अश्लील तथा नग्न चित्र बनाये गये हैं। समस्त चित्र कामासनों के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। उड़ीसा में प्रायः समस्त मन्दिरों में इस प्रकार के चित्र मिलते हैं। पुरी का जगन्नाथ मन्दिर, भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर और कोणार्क मन्दिर नग्न तथा अर्द्ध-नग्न चित्रों से मुक्त नहीं हैं। उड़ीसा के ये वे मन्दिर हैं जो करोड़ों हिन्दुओं की श्रद्धा के केन्द्र हैं और जहाँ लोग पाप मुक्त होने के लिए तथा आत्मा को पवित्र बनाने के लिए आते हैं। किन्तु पता नहीं चलता कि भगवान के इन पवित्र धामों में यह अपवित्रता का घिनौना प्रदर्शन क्यों किया गया है। कोई भी सभ्य व्यक्ति आँखें ऊँची करके इनकी ओर नहीं देख सकता। पिता-पुत्री तथा बहिन-भाई एक साथ देखने का साहस नहीं कर सकते। वाममार्ग के युग की पूरी छाया इनमें प्रतिबिम्बित होती है। पुरातत्व तथा कलात्मक दृष्टि से भले ही इन चित्रों का कुछ महत्व हो, किन्तु आध्यात्मिक पक्ष से तो यह अवश्य निन्दनीय हैं।

छतिया में ले दे कर यह एक मन्दिर है जिससे छतिया आस-पास के क्षेत्र का छत्र बना हुआ है। एक रात यहाँ काटकर हम टांगी तथा निरगुण्डी को छोड़ते हुए सीधा जगतपुर

आकर कोकोकोला फैक्टरी **Cocacola Factory** में ठहरे। यहाँ हम एक रात की बजाय दो रात ठहरे। हम शुक्रवार के दिन यहाँ पहुँचे थे। प्रोग्राम के अनुसार रविवार के दिन कटक में चातुर्मासार्थ प्रवेश करना था। इसलिए हमें दो दिन यहाँ रुकना पड़ा। निरूपा नदी से इस पार दो किलोमीटर पर जगतपुर ग्राम है। कोकोकोला फैक्टरी जगतपुर में है। रविवार १२ जुलाई को हमने जगतपुर से प्रातः ५ बजे विहार किया ऐन सूर्योदय के पश्चात्। हम पूरे चार घण्टों में ६ मील का विहार करके कटक के 'रामचन्द्र भवन' में पहुँचे। प्रिय मुने! आप भी सोचेंगे कि छः मील में चार घण्टों का क्या काम था भला। कटक के बहिन, भाई व बच्चे बहुत दूर तक स्वागत के लिए चले आए थे। चाल फिर धीमी क्यों न पड़ जाती। मंज़िल को देखकर भी पैर कुछ ढीले हो जाते हैं। और फिर बीच-बीच में रुकने तथा विश्राम लेने से भी विलम्ब हो जाना स्वाभाविक है। लगभग नौ बजे हम रामचन्द्र भवन में आए। यहाँ एक स्वागत समारोह किया गया। दो घण्टे के कार्य-क्रम के बाद हमने पूरे ११ बजे काज़ी बाजार, जैन भवन में चातुर्मास के लिए प्रवेश किया। क्षमा करना मेरे बन्धु। पत्र बड़ा विस्तार पा गया है। क्या किया जाये। खड़गपुर से कटक भी तो कम दूर नहीं है। ये तो कुछ पृष्ठों में ही समाप्त हो गया। आपको दूर बैठे हुए सारी झाँकी देनी है। आखिर कुछ लिखना तो पड़ेगा। और वह भी कुछ मज़ेदार हो तो मज़ा आता है पढ़ने में। आपकी रुचि का मैंने पूरा ध्यान रखा है अपने इस पत्र में। समय देकर

इसे अच्छी तरह पढ़ लेना। तभी मेरा लिखना सार्थक होगा।

अच्छा अब शाम के ४ बज गये हैं। गोचरी का समय भी होने वाला है। मैं और मेरी लेखनी दोनों विश्राम चाहते हैं अब। श्रद्धेय महाराज श्री जी के चरण–सरोजों में वन्दना अर्ज करें और सादर सुखसाता पूछें। अन्य मुनि वृन्द की यथा योग्य सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत हूँ।

आपका

मनोहर मुनि 'कुसुद'

आई सदा कि तू अभी मंज़िल से दूर है।
पहुँचा जहाँ-जहाँ भी मुझे दिल लिये हुए॥

—दिल

★

मुसाफ़िर अपनी मंजिल पे
पहुँच कर चैन पाते हैं।
वो मौजें सर पटकती हैं;
जिन्हें साहिल नहीं मिलता॥

—अख्तर

★

उन्हीं को हम जहाँ में
रहरवे-कामिल समझते हैं।
जो हस्ती को सफ़र और
क़ब्र को मंज़िल समझते हैं॥

—वर्क़

★

ख़िरदमन्दों से क्या पूछूँ
कि मेरी इब्तिदा क्या है?
कि मैं इस फ़िक्र में रहता हूँ
मेरी इन्तहा क्या है?

—इक़बाल

★

कटक
का
ऐतिहासिक
चातुर्मास

पत्र !

(१०)

भुवनेश्वर
१०-७-७१

संयममूर्त्ति श्री भद्र मुनि जी।
सुखसाता पूछता हूँ
स्नेहमय हृदय से।

वयोवृद्ध श्री रघुवर दयाल जी महाराज के पाद-पद्मों में सादर वन्दना अर्ज करके सुखसाता पूछें। परसों एक पत्र आपकी सेवा में भिजवाया था। दो तीन दिनों में मिलेगा आपको। तब तक एक और तैयार हो जाएगा। गत पत्र में खड़गपुर से कटक पहुँचने तक की एक झाँकी मात्र दी है। इस पत्र में कटक चातुर्मास का विवरण देने के लिए लेखनी उत्सुक हुई है। आप इसे अवश्य रुचि से पढ़ेंगे। ऐसी आशा है।

चातुर्मास तो प्रायः सन्त जन करते ही हैं और प्रायः सभी क्षेत्रों में होते रहते हैं। किन्तु कुछ चातुर्मास अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। और ये जन-मानस के लिए प्रेरक तथा उद्बोधक होते हैं। इतिहास के पन्नों की वह एक प्रकार से शोभा ही कहे जाते हैं। जैसे कि श्रद्धेय कवि श्री अमर मुनिजी महाराज का 'राजगृह चातुर्मास'। जहाँ तक मेरा ख्याल है भगवान महावीर के पश्चात् श्वे० स्था० सन्त का यह प्रथम ही चातुर्मास था। निश्चय ही ऐसे चातुर्मास जनता के लिए प्रेरक होते हैं

और इतिहास के पन्ने पूरे मान सम्मान के साथ उन्हें अपनी अंक में चिर समय तक सुरक्षित रखते हैं।

कटक में हमारा यह चातुर्मास श्वे० स्था० सन्तों की अपेक्षा इतिहास का पहला ही चातुर्मास था। हमारी दृष्टि से तो नहीं किन्तु अपनी प्राथमिकता की अपेक्षा अवश्य इसका कुछ महत्त्व बन जाता है। किसी क्षेत्र विशेष में चार मास के लिए बैठ जाना ही कोई महत्त्व नहीं रखता। बलिक आनन्दमय क्षणों में चातुर्मास के व्यतीत होने तथा महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पन्न होने में ही चातुर्मास का महत्त्व तथा उपयोगिता बनती है।

कटक उड़ीसा में व्यापार का सबसे बड़ा केन्द्र हैं। भुवनेश्वर से पहले इसे ही राजधानी बनने का सौभाग्य मिला था। लगभग ३ लाख की जनसंख्या का तो यह शहर होगा ही। सैंकड़ों घर जैनों के भी हैं। यह चातुर्मास देहरावासी समाज के जैन भवन में हमने किया। वैसे समस्त जैनसंघों में परस्पर प्रेम तथा सद्भाव है। हमारे चातुर्मास की सफलता का एक कारण यहाँ के जैनों का संगठन भी था। संगठन के बिना तो कोई भी काम सिरे नहीं चढ़ता। फिर चातुर्मास जैसा महत्त्वपूर्ण काम बिना एकता के कैसे सफलता पा सकता है। वास्तव में योग्यता, विद्वत्ता, तपस्या, चरित्र तथा मधुर व्यवहार तो सन्त-जीवन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं ही किन्तु इन सबकी शोभा तथा सही मूल्यांकन एकता के मधुर वातावरण में ही हुआ करता है।

दुर्भाग्य से जब कभी श्रावक परस्पर भिड़ जाते हैं या कभी किसी कारण से मतभेद हो जाता है तो साधु की महानता तथा उच्चता की कोई कीमत नहीं पड़ती। साम्प्रदायिक वातावरण में यह सब कुछ होता रहता है। विषम स्थिति में चातुर्मास के समस्त सदुद्देश्य विलुप्त हो जाते हैं। किन्तु सौभाग्य की बात है कि इधर ये सब संक्रामक रोग नहीं हैं। यहाँ परस्पर प्रेम है, स्नेह है और है एक दूसरे के प्रति सच्ची सहानुभूति। सन्तों के प्रति प्रेम, श्रद्धा तथा भक्ति का सच्चा भाव। सन्तों से कुछ सीखने की कोशिश रहती है इनकी। कभी-कभी ही सन्तों के दर्शन होते हैं इनको इसलिए इनके मन में प्रमोद भावना की लहरें उठना स्वभाविक ही है। जहाँ प्यास हो वहाँ आकर्षण हो ही जाता है। भावुकता तथा गुण ग्राहकता के अन्तस्तल से ही आनन्द का अविरल स्रोत बहता है। वैसे तो आज के पंचम् काल में सब जगह वैषम्य ही वैषम्य है, किन्तु इस प्रदेश के जैनों में यह बिमारी बहुत ही कम पाई जाती है। इसके कुछ सामाजिक हेतु भी हो सकते हैं। किन्तु अपेक्षाकृत इधर संगठन के सूत्र सुदृढ हैं। यह सत्य निसंकोच कहा जा सकता है।

कटक श्री संघ के ऐक्य तथा धर्म-प्रेम का परिचय केवल कथनी से ही नहीं बल्कि उनके व्यवहार से ही मिल जाता है। और संसार में समस्त मूल्य व्यवहार का ही हुआ करता है। दुनिया में लम्बी-चौड़ी बातें मारने वाले तो बहुत हैं, किन्तु व्यवहार तथा आचार में पूरे उतरनेवाले तो विरले ही होते

हैं। यहाँ केवल संगठन तथा सेवा की कोरी बातें ही नहीं हैं बल्कि व्यवहार में आदर्श की छाया सी हैं। अपने धार्मिक विश्वास अलग-अलग रखते हुए भी सामाजिक कामों में सब जगह इकट्ठे ही रहते हैं। स्था० जैनों तथा देहरावासी जैनों का तो घी खिचड़ी सा मेल है। चातुर्मास पर्वाराधन तथा वीर जयन्ती आदि शुभ अवसरों पर ये लोग प्रायः एक होकर चलते हैं। इसलिये प्रत्येक उत्सव पूरी शान-बान के साथ सम्पन्न होता है। हमारे चातुर्मास की विनती में सभी की भावनाएं सम्मिलित थीं। स्वागत में सबकी श्रद्धाओं का संगम था और प्रतिदिन के प्रवचनों में सबकी अभिरूचि भी समान रूप से बराबर बनी रही। चातुर्मास के विशेष अवसरों पर बाल-वृद्ध का योगदान निरन्तर बना रहा। उसमें कोई अन्तर नहीं देखा मैंने। प्रवचन तो प्रतिदिन सुवह चलता था। उपस्थिति आशा से भी अधिक हो जाती थी। जैन-भवन काफी बड़ा है। एक बड़ा हाल और एक ओर गैलरी भी है। हाल ऊपर नीचे से सब खचाखच भर जाता था। पर्युषण पर्व से पहले की स्थिति तो वास्तव में दर्शनीय थी।

पर्युषण पर्व भी संयुक्त रूप में मनाया गया। क्योंकि तिथि एक ही पड़ गई थी। पर्व के पवित्र प्रसंग पर कलकत्ता से लगभग ६० वहन व भाइयों का संघ कटक पहुँच गया। संघको लाने की व्यवस्था कलकत्ता के सेठ चम्पक भाई दोषी की पूज्य माता लाभु वहन की ओर से थी। बालासोर से भी ३०-३५

श्रावक-श्राविकाओं का समुदाय धर्म तथा तपस्या का लाभ लेने के लिए आ गया था। इसके पीछे भोगी भाई अजमेरा की हार्दिक प्रेरणा थी। और अन्य सारा भार भी उन्होंने अपने कन्धे पर ले लिया।

'परोपकाराय सतां विभूतयः' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले ऐसे ही महानुभाव हुआ करते हैं। धन तो कइयों के पास हो जाता है किन्तु सदुपयोग तो उसका कोई विरला ही करता है। शासन की प्रभावना ऐसे ही उदार चेताओं से हुआ करती है। जो कंजूस अपने को भूखा रखकर धन जोड़ता है, वह दूसरे की भूख क्या मिटाएगा भला। जो अपनी तृष्णा को पूरा करने के चक्र में अपनी आवश्यकता की भी उपेक्षा करता है, वह दूसरों की आवश्यकता तो क्या पूरी कर सकता है। ऐसे लोगों की सम्पत्ति उनके तथा अन्य के लिए अभिशाप बनकर आती है। और लक्ष्मी को मुक्त करों से सद्कार्य में व्यय करनेवालों की सम्पत्ति उनके तथा जगत के कल्याण के लिए होती है। किसी उर्दु के शायर ने क्या ही अच्छा कहा है—

तन परस्ती पै जो हो सर्फ
वह दौलत क्या है ?
ग़ैर को जिससे न हो राहत
वह राहत क्या है ?

अर्थात् जो धन केवल अपने शरीर के लालन-पालन में

ही खर्च कर दिया जाये। क्या वह भी कोई धन है ? जिस काम से दूसरे को खुशी न हो, केवल अपने को ही खुशी नसीब हो। भला वह भी क्या खुशी है ?

धन से अपने को तो खुशी मिलती ही है, किन्तु जब उससे दूसरों को आनन्द दिया जाता है तभी धन सार्थक होता है। लक्ष्मी को श्रेष्ठ कार्यों में लगाना ही लक्ष्मी की पूजा है। एक पाश्चात्य विद्वान ने इसके सम्बन्ध में क्या ही सुन्दर कहा है—

Riches are a blessings only to him who makes them a blessings to others.

धन उसी के लिए वरदान है जो इसे दूसरों के लिए वरदान बना देता है।

बाहर से आनेवाले बहन-भाई दस दिन कटक ठहरे। कटक श्री संघ ने भी उनकी सुख सुविधा तथा सम्मान में कोई कसर शेष नहीं रखी।

पर्युषण पर्व की आराधना तो सुन्दर ढंग से हुई ही, किन्तु बाहर से आने वाले बहनों व भाइयों की उपस्थिति से पर्व में एक नया ही रंग छा गया था। एक उल्लास की नयी तरंग उत्पन्न हो गई थी। सारा उपाश्रय एक हंसते तथा अठकेलियां करते हुए फूलों से भरे बाग की तरह मालूम पड़ता था।

लाभु बहन ने कटक श्री संघ को पर्युषण के उपरान्त एक प्रीति भोज दिया। जिससे स्नेह तथा वात्सल्य का एक नये ही वातावरण का सृजन हुआ। जो कभी भूल नहीं सकता। "समस्त बहन व भाई यह कहते हुए सुने जाते थे कि कटक श्री संघ के परस्पर प्रेम तथा सेवाभाव को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे चतुर्थ आरा फिर से आ गया हो।"

विदाई पर समस्त कटक श्री संघ अपने अतिथियों को विदा देने के लिए स्टेशन पर गया। अभी तक उनके हृदय में उस समय की संस्मृति उसी तरह हिलोरें ले रही है। सच, कटक श्री संघ की सेवा को आदर्श के रूप में सर्वत्र उपस्थित किया जा सकता है।

चातुर्मास में सबसे महत्त्वपूर्ण जो काम हुआ, वह था उत्कल-आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन का आयोजन। उड़ीसा के प्राङ्गण में आकर मैंने अनुभव किया कि उड़ीसा की भूमि से जैनत्व एकदम विलुप्त हो चुका है। लोग जैन का नाम तक नहीं जानते। जैन-मुनियों की चर्या से सर्वथा अनभिज्ञ। जैन-धर्म के सिद्धान्तों से बिल्कुल अपरिचित। महाराजा खारवेल के समय में जहाँ जैनत्व की दुन्दुभि बजती थी वहाँ आज जैन धर्म का नाम लेवा भी कोई नहीं। जहाँ उदयगिरि की गुफाओं में हजारों जैन सन्यासी साधना करते थे और कलिङ्ग की धरती को अपनी चरण-रज से परिपूत करते हुए विचरते थे। वहाँ आज एक भी सन्त दिखाई नहीं देता। और मूल का कोई जैन धर्म

का उपासक दूर-दूर तक नजर नहीं आता। जो लोग भी यहाँ जैन हैं वे सब बाहर से आए हुए हैं। अधिकतर मारवाड़ी और गुजराती। वे भी सब बिखरे हुए, दूर—दूर बसे हुए और एक दूसरे से प्रायः अपरिचित। अपने-अपने काम धन्धों में व्यस्त, दाल-रोटी की चिन्ता में इधर-उधर दौड़-धूप करने में ही जिनके जीवन के स्वर्णिम क्षण सब गुजर जाते है। जिनके पास अपने जीवन तथा समाज के सम्बन्ध में सोचने के लिए समय नहीं है। शहरों के जीवन में गाओं की अपेक्षा अवश्य कुछ अन्तर रहता है। शहरों के जीवनमें कुछ स्फूर्ति तथा जाग्रती देखी जाती है। और उनका परस्पर मेलजोल भी अच्छा है। सामाजिकता गतिविधियों में ये लोग कुछ रस लेते रहते हैं। और सामानिक का कुछ मूल्य भी समझते हैं। किन्तु प्रेरणा का अभाव होने से कुछ शिथिलता अवश्य रहती है। सुस्तो का यह अर्थ नहीं कि इनमें संस्कार ही नहीं। धर्म के संस्कार तो हैं किन्तु कोई उन संस्कारों को जगाने वाला चाहिये। प्रेरणा मिलने तथा सम्यक् दिशा-दर्शन देने से बड़े-से बड़े काम को भी सुचारु रूप से करने को इनमें क्षमता है। इधर साम्प्रदायिकता के अखाड़े नहीं हैं। परदेस में तथा अल्प संख्या में होने के कारण ये लोग प्रायः आपस में एक दूसरे का पूरी तरह सत्कार करते हैं। और प्रत्येक काम को संगठित होकर करने का प्रयत्न करते हैं। अर्थ शक्ति भी इनके पास कम नहीं है। सब पर लक्ष्मी की पूरी दृष्टि है। कोई ठोस योजना इनके सामने हो तो उसको भी

उठाने का इनके कन्धों में प्रयाप्त बल है। मैंने थोड़े दिनों के अध्ययन से ही ऐसा अनुभव किया कि उड़ीसा में सब कुछ होने पर भी दूर-दूर तथा बिखरे हुए जैनों का एक सुदृढ़ संगठन नहीं है। जिससे ये एक दूसरे के दुःख सुख को नहीं जान पाते। और साधन रखते हुए भी कोई महत्त्वपूर्ण काम करने में भी सफल नहीं हो पाते। आज के युग में जन-जीवन से सम्पर्क जोड़ना अत्यन्त आवश्यक है। जो समाज जनता के दुःख सुख की परवाह नहीं करती। उनके व्यावहारिक क्षेत्र में उनकी सुख सुविधा में अपना योगदान नहीं करती। वह समाज युग की दौड़ में पिछड़ जाती है। उसे जनता का भी प्यार नहीं मिलता और वह समाज जन-मानस में अपना स्थान नहीं बना पाती। जो समाज अपने ही स्वधर्मी भाइयों के दुःख दर्द की खबर नहीं रख पाती। उससे दूसरों को तो क्या आशा हो सकती है। पहले तो अपने ही घर को सम्भालने की आवश्यकता है और फिर जनता से अपना सम्पर्क बढ़ाने की। साधु तो कभी इधर भाग्य से ही आते हैं। क्षेत्रों का अभाव होने से विहार में साधु को विशेष कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब जैन ही कम हैं तो जैन-स्थान तो इधर कहाँ मिल सकते हैं? किन्तु यदि इधर सब जैनों का एक संगठन बना हुआ हो तो विहार की सब कठिनाइयों को दूर होने में ज़रा भी देर न लगे। और सन्त लोग भी सुविधा से विचर सकते हैं। साधुओं को इधर पधारने के लिए सामूहिक रूप से प्रेरित किया जा सकता है।

सन्तों के निरन्तर इधर भ्रमण करने से जैन धर्म का प्रचार हो सकता है और जैन समाज का गौरव पुनः अंगड़ाई लेकर उत्कल की धरती पर जाग सकता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैंने एक सम्मेलन बुलाने की योजना प्रस्तुत की। मेरी योजना के पीछे मेरे सहयोगी मुनि श्री विजय जी की हार्दिक शुभ सहमति थी। संघ ने हमारी प्रस्तावित योजना पर कई दिनों तक विचार विमर्श किया और अन्त में यह निर्णय किया गया कि चातुर्मास के पश्चात् उत्कल तथा आन्ध्र के समस्त जैनों का एक संयुक्त सम्मेलन बुलाया जाये। इसके प्रति किसी के दो मत नहीं हुए। सबने एक स्वर से सम्मेलन की महत्ता तथा उपयोगिता का हार्दिक अभिनन्दन किया।

चातुर्मास तो खूब ठाठ से व्यतीत हुआ। केवल सम्मेलन के लिए हमें कुछ दिनों के लिए रुकना पड़ा। लीजिए, अब सुबह के दस बजे हैं। आज इतना ही। कटक सम्मेलन की भव्य झाँकी आप इस पुस्तक के अगले पृष्ठों में देखेंगे। मुनिवृन्द को यथा योग्य वन्दना कहें और सुख साता पूछें। शेष कुशल मंगल।

आपका
मनोहर मुनि 'कुमुद'
भुवनेश्वर
(उड़ीसा)

एकता के हाथ में हो देश का उत्थान है।
है इसी में सफलता, इसमें छिपा निर्माण है।
विश्व के सारे सुखों का एकता सोपान है।
इसके बिना इनसान को मिलता नहीं भगवान है।
धर्म की मधु बांसुरी का यह सलोना गान है।
संजीवनी बूटी है यह इस विश्व का यह प्राण है।
ऐक्य की हम शक्तियों को ध्यान में लाते नहीं।
रंग स्वार्थ के दिलों से उतरने पाते नहीं।
बिन्दुओं के मेल से हो देख लो सागर बने।
दीप की लौ को बुझाते हैं शलभ मिलकर घने।
तारें मिलें जब सूत की गज को पकड़ लाया करें।
पत्तियां मिलकर विटप की पथिक को छाया करें।
जब एकता के सूत्रों में हम पिरोये जायेंगे।
यश, विजय, सुख शांति सब पास चलकर आयेंगे।

मुनि मनोहर 'कुमुद'

★

कटक (उड़ीसा) के उत्कल-आन्ध्र प्रादेशिक जैन-सम्मेलन की एक भव्य झाँकी

पत्र !

(११)

राष्ट्रपति सचिवालय
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-४

PRESIDENT'S SECRETARIAT,
RASHTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI-4

पत्रावली सं० 118-हि 170 — अक्तूबर 24, 1970

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम भेजा 19 अक्तूबर, 1970, का आपका पत्र प्राप्त हुआ जिसके लिए आप उनका धन्यवाद स्वीकार करें। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि उत्कल आंध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

सम्मेलन की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

भवदीय,

(खेमराज गुप्तः)

राष्ट्रपति के अपर निजी सचिव

श्री बी० के० शेठ,
अध्यक्ष,
उत्कल आंध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन,
जैन भवन, काज़ी बाज़ार,
कटक (उड़ीसा)

एम० आर० 2239/70.

रेल मन्त्री, भारत
MINISTER FOR RAILWAYS
INDIA
नयी दिल्ली
नवम्बर १३, १९७०

सन्देश

प्रसन्नता की बात है कि उत्कल आंध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन का कटक में २०-२१-२२ नवम्बर को आयोजन किया जा रहा है।

जन-मानस को शुद्धाचार की ओर मोड़ना तथा नैतिक अभ्युदय आज की सबसे बड़ी आवश्यकताएं हैं। इनके आने से समाज में जो रचनात्मक शक्ति आएगी उससे देश आगे ही बढ़ेगा।

मेरी कामना है कि यह सम्मेलन अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल हो।

(गुलज़ारी लाल नन्दा)

संसदीय कांग्रेस दल (संस्था)

CONGRESS PARTY IN PARLIAMENT
(ORGANISATION)

डा० राम सुभग सिंह
नेता विरोधी पक्ष, लोक-सभा

२, संसद भवन
नयी दिल्ली-१

प्रिय श्री बी० के० सेठ जी, २५ अक्तूबर, १९७०

आपका दिनांक २० अक्तूबर, १९७० का पत्र मिला, जिसमें आपने मुझे जैन संघ के तत्त्वावधान में उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन के आयोजन के अवसर पर २०, २१ व २२ नवम्बर, १९७० को आने के लिए आमंत्रित किया है। मैं आपका यह आमंत्रण सहर्ष स्वीकार करता पर समयाभाव के चलते ऐसा करने में असमर्थ हूँ। कृपया क्षमा करेंगे।

आपका यह आयोजन सफल व शानदार होवे, यही मेरी हार्दिक कामना है।

आपका,

(राम सुभग सिंह)

श्री बी० के० सेठ,
अध्यक्ष, उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन,
जैन भवन, काज़ी बाज़ार,
कटक (उड़ीसा)।

सत्यमेव जयते

BIHAR GOVERNOR'S CAMP

PATNA,
October 31, 1970.

Dear friend,

It is nice of you to invite me to the Jain Sammelan scheduled to be held in Cuttack from 20th to 22nd November'70. Having lived in Gujarat and Bihar I have come in contact not only with Munis and learned lay men, but large masses of people who profess the Jain faith. Only last week I had the opportunity of visiting Pawapuri, the place where Mahavira left his earthly body. The service by the Jain community to the society as a whole is indeed impressive. Though I am out of touch with my home town for about twentyfive years, I still remember the leading part played by the Jain residents of Cuttack of whom the Parwar family was more prominent.

I wish your Conference success.

With regards,

Yours sincerely,
(Nityanand Kanungo)

Shri B.K. Sheth,
President, U.A.P. Jain Sammelan,
Jain Bhawan, Kazi Bazar,
Cuttack.

जयपुर
राजस्थान

दामोदर व्यास,

गृह मन्त्री

क्रमांक 7128/गृ.मं/70 दिनांक 17 नवम्बर, १९७०

प्रिय महोदय,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि दिनांक २०-२१-२२ नवम्बर, १९७० को जैन संघ के तत्त्वावधान में उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

आज जिस प्रकार का हिंसा का वातावरण देश में विद्यमान है उसमें सुधार लाने में इस प्रकार के सम्मेलन बड़ा योग दे सकते हैं। अहिंसा के प्रचार से जन-मानस बदला जा सकता है। मैं आशा करता हूँ कि उत्कल आंध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन लोगों को शुद्धाचार की ओर मोड़कर नैतिक अभ्युदय की ओर अग्रसर करेगा।

सम्मेलन की सफलता के लिए मेरी शुभ कामनायें हैं।

विनीत,
(दामोदर व्यास)

अध्यक्ष,
उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन,
जैन भवन, काज़ी बाज़ार,
कटक (उड़ीसा)

शिवचरण माथुर
शिक्षामन्त्री

जयपुर
राजस्थान
२, नवम्बर, १९७०

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि दिनांक २० से २२ नवम्बर १९७० को जैन संघ के तत्त्वावधान में उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है तथा इस अवसर पर भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रतिष्ठित एवं विद्वान व्यक्ति भाग ले रहे हैं।

मैं आशा करता हूँ कि धर्म एवं संस्कृति के साथ-साथ समाज के समक्ष उपस्थित वर्तमान समस्याओं का अध्ययनपूर्ण एवं विवेचनात्मक विश्लेषण कर अपने सुलझे हुए विचारों से नई पीढ़ी का मार्ग दर्शन करने में यह सम्मेलन सफल होगा।

मैं समारोह की सफलता की कामना करता हूँ।

(शिवचरण माथुर)
शिक्षामन्त्री

अध्यक्ष
उत्कल आंध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन,
जैन भवन, काज़ी बाज़ार
कटक।

भुवनेश्वर
(उड़ीसा)
११-७-७१

गुणप्रिय श्री भद्र मुनि जी

सस्नेह सुख साता ।

कल आपकी सेवा में एक पत्र प्रेषित किया था। उसमें कटक चातुर्मास की एक झाँकी दी थी। दो तीन दिनों में ही आपकी नज़रों में यह झाँकी आ सकेगी। इस पत्र में "उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन सम्मेलन" की हलकी सी झलकी प्रस्तुत करूँगा। सम्मेलन की सामाजिक जीवन में अपनी एक विशिष्ट उपयोगिता है। सम्मेलन समाज के शिथिल अंगों में एक नवीन चेतना की सृष्टि करते हैं। और दूर-दूर और अलग-अलग पड़े हुए भाइयों को एक दूसरे के सम्पर्क में लाकर उन्हें एकता के धागे में पिरोने का पुनीत कार्य करते हैं। संक्षिप्त रूप में सम्मेलन के निम्न उद्देश्य समाज के सामने थे :—

(१) उत्कल और आन्ध्र प्रान्त की एक महासभा का गठन।
(२) जैन सिद्धान्तों का प्रचार। विभिन्न भाषाओं में जैन साहित्य का प्रकाशन।

(३) विभिन्न क्षेत्रों में चातुर्मास की व्यवस्था करना। धार्मिक शिक्षा निकेतनों की स्थापना तथा अन्य सामाजिक प्रवृत्तिएं।

(४) स्वधर्मी भाइयों के लिए उद्योग शालाएं खोलना ।

(५) स्थान-स्थान पर नैतिक ज्ञान शालाएं चलाना ।

(६) अहिंसा स्तूप की स्थापना ।

(७) उड़ीसा में एक ऐसे केन्द्र की स्थापना करना जहाँ साध्वी तथा साधुवर्ग रहकर अध्ययन कर सके और फिर पूर्व तथा दक्षिण भारत में अहिंसा धर्म के प्रचारार्थ विचर सके।

इन्हीं पावन उद्देश्यों को लेकर जैन संघ के तत्त्वावधान में नवम्बर मास की २०-२१-२२ इन तीन शुभ तिथियों पर यह त्रिदिवसीय सम्मेलन जैन भवन काज़ी बाज़ार में आयोजित किया गया। सम्मेलन का दायित्व सम्भालने के लिए जैन संघ कटक द्वारा एक सम्मेलन समिति का निर्माण किया गया। जिसमें निम्न पदाधिकारी तथा सदस्यगण थे। परिचयार्थ उनकी नामावली दे रहा हूँ :—

सम्मेलन समिति

(१) श्री बाबूलाल केशवजी सेठ, अध्यक्ष

(२) श्री चम्पकलाल करसन दास मेहता, उपाध्यक्ष

(३) श्री मदनलाल नाहटा, मन्त्री

(४) श्री इन्दुलाल मेहता, स्वागत मन्त्री

(५) श्री बेनीलाल द्वारकादास मेहता, उपस्वागत मन्त्री

(६) श्री कन्हैया लाल हरजीवन दास मेहता, कोषाध्यक्ष

सदस्यगण

(१) श्री विनायक लाल भावचन्द मेहता

(२) श्री मुन्नालालजी नाबरिया

(३) श्री छगन लाल जी वैद्य

(४) श्री रतीलाल रामजी शाह

(५) श्री धर्मसी हरखजी मेहता

(६) श्री शशिकान्त बाबूलाल मेहता

(७) श्री चम्पकलाल मोहनलाल मेहता

(८) श्री गौतम लाल कालीदास अवसानी

(९) श्री धीरज लाल कानजी सेठ

(१०) श्री मगनलाल अमृत लाल

उपर्युक्त समिति के प्रबन्ध में २० नवम्बर प्रातः ८ बजे सम्मेलन का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। सम्मेलन का उद्घाटन माननीय सेठ अचल सिंह M. P. द्वारा सोत्साह सम्पन्न हुआ। कलकत्ता, बालासोर, जलेश्वर, जटनी, भुवनेश्वर और पुरी से सैंकड़ों बहन व भाई इस शुभ अवसर पर आए हुए थे। पंजाब से लुधियाना तथा अम्बाला से सोनीराम दिवानचन्दजी तथा जयगोपालजी श्रद्धा तथा प्रेम के बन्धे हुए इतनी दूर से भी सम्मेलन पर उपस्थित हो गये। सच्चे प्रेम के सामने मनुष्य सागरों तथा पहाड़ों को भी पार करके पहुँच जाता है। बस, एक मनुष्य में सच्ची लगन होनी चाहिये।

सुबह-सुबह ही सभा-मण्डप जनता से खचाखच भर गया था। कटक की छोटी-छोटी बालिकाओं ने उद्‌घाटन के पावन-प्रसंग पर मंगल-गान गाकर सबको मुग्ध कर दिया। मंगलाचरण से सम्मेलन का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। जैन धर्म, अहिंसा धर्म, भगवान महावीर तथा भारतमाता के जयकारों से आकाश गूञ्ज उठा। सैंकड़ों वर्षों के पश्चात् ही उत्कल की धरती पर यह अपूर्व आयोजन हो रहा था। ऐसा मालूम होता था जैसे कि चिर सुप्त जैनत्व पुनः करवट बदलकर जाग रहा हो। लोगों में श्रद्धा, प्रेम तथा उत्साह का एक सागर उमड़ रहा था। सब में कुछ कर गुजरने की मंगल भावना उठ रही थी। जैन-भवन में मानों आध्यात्मिक बसन्त आ गया हो। ऐसा कुछ लगता था। श्री विजय मुनि जी म० के मंगलाचरण तथा कुछ अन्य कार्य क्रम के पश्चात् ही मन्त्री श्री मदन लाल नाहटा ने सम्मेलन के प्रथम दिन के अध्यक्ष व उद्‌घाटनकर्त्ता श्री अचल सिंह जी साहब तथा अन्य अतिथिगण का परिचय दिया। आपने सम्मेलन के सम्बन्ध में कहा कि "हमने आप सबके सहयोग पर ही यह बड़ा काम उठाया है और आप सबके सहयोग से हमें इसमें सफलता मिल सकेगी आपने अपने अतिथियों का सम्मान करते हुए कहा कि "जो धर्म प्रेमी भाई इस शुभ अवसर पर पहुँच सकते थे वे तो पहुँचे ही। सम्मेलन की आवाज प्रायः सबके कानों तक पहुँचाने का पूरा प्रयास किया गया है। कोई नगर व ग्राम ऐसा नहीं रहा जहाँ सम्मेलन

की सूचना न गई हो। हमारे आह्वान का सबने हृदय से स्वागत किया है। कुछ महानुभावों ने साक्षात उपस्थित होकर और संघ को अपनी सेवा का अवसर देकर कृतार्थ किया है। किन्तु हमारे कुछ सज्जनों ने अपनी शुभ कामनाओं तथा संदेशो में सम्मेलन के प्रति अपना अभिनन्दन व्यक्त कियो है। वे सब सन्देश मैं आप लोगों के सन्मुख संक्षेप में पढ़कर सुनाता हूँ।" जनता ने समस्त सन्देशों का साभार स्वागत किया।

प्रिय मुने! वे सभी संदेश इस पुस्तक में लिखने तो सम्भव नहीं हो सकते। किन्तु मैं सन्देश प्रेषकों की नामावली अवश्य आपके परिचय के लिये लिखूँगा। उनके नाम के शुभाक्षर ये हैं—

(१) राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि, नयी दिल्ली-४
(२) भूतपूर्व रेलवे मन्त्री श्री गुलज़ारी लाल नन्दा, नयी दिल्ली
(३) राम सुभग सिंह नेता विरोधी पक्ष, (लोक सभा) नयी दिल्ली
(४) भूतपूर्व राजपाल नित्यानन्द कानुनगो (पटना) (U. P.)
(५) भूतपूर्व शिक्षा मन्त्री शिवचरण माथुर, जयपुर (राजस्थान)
(६) भूतपूर्व गृहमन्त्री दामोदर व्यास, (जयपुर) (राजस्थान)
(७) राष्ट्र सन्त कवि श्री अमर मुनि जी महाराज, आगरा
(८) कलाकुमार सम्पादक अमर भारती, आगरा (U. P.)
(९) विश्वधर्म सम्मेलन के प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी (नयी दिल्ली)

(१०) आचार्य श्री समुद्र विजयजी म०, १२ पायधुनी (मुम्बई-३)

(११) अगरचन्द जी नाहटा, (बीकानेर) (राजस्थान)

(१२) भूतपूर्व मुख्य मन्त्री हीरालालजी शास्त्री (वनस्थली विद्या-पीठ) (राजस्थान)

(१३) श्री विजय मुनिजी म०, मुम्बई (विलेपारले)

(१४) सन्तबालजी, चींचपोपली (महाराष्ट्र)

(१५) वयोवृद्ध श्री छोटेलालजी म०, मण्डी अहमदगढ़ (पंजाब)

(१६) श्री शान्ति स्वरूपजी म०, जैननगर (मेरठ)

(१७) श्री ज्ञान मुनिजी म०, फिलौर (पंजाब)

(१८) श्री फूलचन्दजी महाराज, 'श्रमण' (लुधियाना) (पंजाब)

(१९) श्री रतन मुनिजी म०, लुधियाना (पंजाब)

(२०) मुनि श्री नेमिचन्द्रजी, नारायणगढ़ (अम्बाला) (हरियाना)

(२१) कवि श्री चन्दन मुनिजी म०, बरनाला (पंजाब)

(२२) श्री केवल मुनिजी म०, (ऊटि) (नीलगिरि)

(२३) श्री नेमि मुनिजी म०, चण्डीगढ़ (पं०)

(२४) श्री जौहरी मुनिजी, फरिदकोट (पं०)

(२५) श्री सन्तोष मुनिजी म०, फरीदकोट (पं०)

(२६) श्री हरिचन्दजी म०, रोहतक (हरियाना)

(२७) श्री जयन्तलालजी म०, टाटानगर (जुगसलाई) (बिहार)

(२८) श्री पूर्णानन्दजी म०, नागौर (राजस्थान)

(२९) श्री पद्मचन्दजी भण्डारी, भटिण्डा (पं०)

(३०) श्री मंगलमुनि तथा भगवती मुनि जी म०, नान्देशमा (राजस्थान)

(३१) श्री राजेन्द्र मुनि सोहन मुनि जी, (वीरपुत्र) नान्देड़ (महाराष्ट्र)

(३२) श्री हुकम देव जी म०, देहली (सब्ज़ी मण्डी)

(३३) श्री महासती कौशल्याजी, देहली (सब्ज़ी मण्डी)

(३४) महासती राजेश्वरी जी म०, पटियाला (पं०)

(३५) महासती पद्मलता जी, (देहरावासी) मद्रास

(३६) शान्ति प्रसाद साहू (नयी दिल्ली)

(३७) आनन्दराज जी सुराना प्राणीमित्र (नयी दिल्ली)

(३८) महासती कौशल्या कुंवरजी, नान्देशमा (राजस्थान)

(३९) उदयपुर स्थानकवासी जैन संघ

(४०) जैन संघ, कपासन

(४१) जसवन्त भाई अजमेरा, बालासोर (उड़ीसा)

(४२) सुखलाल बी० मोदी, झरिया (बिहार)

(४३) श्री नेमिचन्दजी जैन विशाखापट्टनम् (आंध्रप्रदेश)

(४४) श्री हेमचन्दजी जैन, (देहली)

(४५) जैन संघ, जमशेदपुर

(४६) राजरूप टांक जौहरी, जयपुर (राजस्थान)

(४७) कोट वर्धमान स्था० जैन श्रावक संघ (मुम्बई)

(४८) उत्कल जैन नवयुवक परिषद (खरियारोड़) कालाहाण्डी (उड़ीसा)

(४९) जवरचन्द मेहता, सोजतरोड़ (राजस्थान)

(५०) जवाहरलाल मुलोत, अमरावती (मध्यप्रदेश)

(५१) हंसराज जन शिक्षापति शिक्षा निकेतन बोर्ड (पं०)

(५२) धर्म ज्योति परिषद भीलवाड़ा (राजस्थान)

(५३) श्री नेमिचन्दजी मंत्री, अहिंसा प्रचारिनी सभा, जवाहरनगर (देहली)

(५४) सुभद्र कुमार जी पाटनी, जयपुर राजस्थान)

ये हैं सन्देश प्रेषकों के शुभ नाम। इनकी शुभ कामनाओं तथा मनोहर संदेशों से सम्मेलन के कार्य कर्त्ताओं के उत्साह को अवश्य ही बल मिला। आशीर्वाद तथा शुभ कामना के तो दो शब्द ही काफी होते हैं। किन्तु जब पृष्ठों के पृष्ठ ही आशीर्वाद के भरे हुए प्राप्त हो जायें तो फिर सम्मेलन की सफलता में सन्देह ही क्या हो सकता था। सच, इन महानुभावों की कृपा से ही सम्मेलन सफलता की चोटी पर पहुँच सका है।

अध्यक्षीय पद से भाषण करते हुए सेठ अचल सिंह जी ने कहा "मैं अस्वस्थ तथा वृद्ध होता हुआ भी आपकी सेवा में पहुँच गया हूँ। कटक संघ की ओर से मुझे निमन्त्रण मिला। किन्तु अपनी शारीरिक दुर्बलता के कारण मैंने अपनी विवशता प्रकट की। किन्तु महाराज श्री तथा कटक संघ का फिर ज़ोरदार आग्रह भरा पत्र मिला। जिसे मैं टाल नहीं सका। आपके बीच में अपने आपको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। और अपने सामने अपार जनसमूह देखकर तो हृदय एकदम गदगद हो गया है। कटक श्री संघ ने इतना बड़ा भार उठाया है। यह प्रशंसनीय है।

आज सम्मेलन का पहला दिन है फिर भी मैं पंडाल में काफी रौनक देख रहा हूँ। इससे सम्मेलन के प्रति जनता के उत्साह का पूरा परिचय मिलता है। आज का युग संगठन का युग है। वह ही कौम जीवित रह सकेगी जिसका संगठन सुदृढ़ होगा। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि जैन समाज आज अनेक धाराओं में बँट गया है और उसकी शक्ति क्षीण हो रही है महाराज श्री जी की सत्प्रेरणा से आपने संगठन की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। शताब्दियों से उत्कल की धरती पर अहिंसा के स्रोत सूखे पड़े हैं। वैसे तो मांसाहार आज सारे देश में ही बढ़ गया है किन्तु उत्कल के जन-जीवन में आमिष का व्यवहार विपुल रूप में देखा जाता है। आज के युग की बढ़ती हुई हिंसा, अहिंसा संस्कृति के लिये एक चुनौती है। देश में जितने ज़ोरों से हिंसा बढ़ रही है उससे अधिक ज़ोरों से अहिंसा का प्रचार किया जाये तभी जैनत्व टिक सकता है। और तभी साधु समाज भी जीवित रह सकता है। हिंसा के बढ़ ज़ाने से अहिंसा को अपना प्राण मानने वाले समूचे समाज को खतरा है। हमें उस खतरे का मुकाबला करने के लिए सुसंगठित होकर आगे बढ़ना चाहिये। आपसी मतभेदों को भुलाकर एक जान हो जाना चाहिये। मैं आपके सम्मेलन की सफलता के लिए शुभ कामना करता हूँ।”

कटक श्री संघ तथा बाहर से आने वाले समस्त बहनों व भाइयों ने सेठ साहब की सरलता, सादगी तथा धर्मनिष्ठा की

सम्मेलन के सुअवसर पर उपस्थित जनता का एक मनोरम दृश्य। प्रवचन सुनते हुए—

भूरि-भूरि प्रशंसा की और सेठ श्री के महान् तथा उदात्त विचारों से खूब प्रभावित हुए। शुक्रवार का कार्यक्रम आनन्दमय वातावरण में समाप्त हुआ। शनिवार को नवीन प्रभात के साथ ही नये उत्साह के साथ दूसरे दिन का कार्यक्रम सेठ श्री अचल सिंह जी की प्रधानता में ठीक ८ बजे आरम्भ हो गया। बाहर से और लोग भी समय पर पहुँच गये। ज़िससे सभा-मण्डप में और भी उल्लास छा गया। सैंकड़ों अनजाने चेहरे एक दूसरे के परिचय में आए। और जैनों को उत्कल में अपनी शक्ति का भी ज्ञान हुआ। सबके मुख पर हर्ष तथा आनन्द की एक अपूर्व झलक नज़र आ रही थी।

श्री विजय मुनिजी के मधुर मंगलाचरण से कारवाई जलसा की शुरु हुई। रंगारंग के प्रोग्राम आते रहे। इस जलसे में जैन मात्र सम्मिलित थे। और अजैन लोग भी हज़ारों की संख्या में उपस्थित थे। मानों आदमियों को समुद्र ठाठें मार रहा हो। ऐसा कुछ आँखोंको प्रतीत होता था। कटक श्री संघ ने बंगला कांग्रेस के अध्यक्ष श्री विजय सिंहजी नाहर को सादर निमन्त्रित किया। और हमारी भी तीव्र भावना थी कि वे सम्मेलन पर अवश्य आएं। आप अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी कटक श्री संघ को प्रार्थना और हमारी भावना को ध्यान में रखते हुए समय पर पहुँच ही गये। आपके आने से सम्मेलन को और भी चार चान्द लग गये। श्री मदनलाल जी नाहटा ने आपका परिचय जनता को दिया। और उसके पश्चात् कुछ

समय के लिए आपने अपने क्रान्तिकारी विचारों से जनता को लाभान्वित किया। आपने अपने भाषण में कहा "मुझे आपके इस विराट सम्मेलन पर आकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। राजनैतिक जीवन ही कुछ ऐसा है कि जैसे गुलाब काँटों से घिरा रहता है, उसी तरह हमलोग भी उलझनों से घिरे रहते हैं। महाराज श्री जी की कृपा से ही मैं यहाँ पहुँच पाया हूँ, या आप सब का प्रेम मुझे यहाँ खींचकर लाया है। सम्मेलन को देखने से ही ज्ञात होता है कि आप लोगों में अपने धर्म, संस्कृति तथा समाज निर्माण के लिए अदम्य उत्साह है। किन्तु मैं कहूँगा कि यह उत्साह सदा बना रहना चाहिए। दूध के उफान की तरह बाद में ठण्डा नहीं पड़ जाए। प्रायः लोग काम बड़े जोश से आरम्भ करते है, किन्तु बाद में बिल्कुल ही ढीले पड़ जाते हैं। ऐसे लोगों का काम केवल प्रदर्शन मात्र होता है। जीवन में वे कभी अपने लक्ष्य को नहीं पाते। कहा भी है कि जघन्य लोग तो शंका के कारण काम आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम वे हैं जो काम शुरु करके बीच में छोड़ देते हैं और उत्तम पुरुष वे ही होते हैं जो विघ्न बाधाओं की परवाह न करके सतत् आगे बढ़ते जाते हैं और अपने लक्ष्य तक पहुँचे बिना चैन से नहीं बैठते। आपका सम्मेलन अवश्य सराहनीय है किन्तु यह और भी सफल समझा जाएगा जब यह अपने उद्देश्यों में सफल होगा।" जनता ने आपके विचारों का हृदय से अभिनन्दन किया। भिन्न-भिन्न प्रकार के उत्साहवर्धक कार्यक्रमों के पश्चात् स्वागताध्यक्ष

... मुनि जी । श्री विजय मुनि जी संगीत गाते हुए ।

नहीं जा सकता। श्री विजय मुनिजी म० के दान सम्बन्धी भजन ने भी जनता को प्रोत्साहित किया और खूब समय बाँध दिया। दोनों दिन कुछ-कुछ मुझे भी कहना ही पड़ता था। उसके विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। किन्तु हाँ, रविवार के दिन जो समाज के नाम मैंने अपना सन्देश दिया उसके सम्बन्ध में दो शब्द आपके परिचयार्थ अवश्य लिखूँगा। किन्तु ज़रा आगे चलकर। दोपहर के भोजन के उपरान्त जैन भवन के हाल में समस्त जैनों की एक बैठक बुलाई गई। जिसमें उत्कल आन्ध्र प्रादेशिक जैन कान्फरैन्स U. A. P. Confference का गठन किया गया। रात्रि के समय सम्मेलन के विशाल पण्डाल में बालक तथा बालिकाओं का सांस्कृतिक कार्यक्रम रखा गया। छोटी-छोटी बालिकाओं द्वारा रंगारंग के कार्यक्रम दिखाये गये। कटक की लड़कियों ने कृष्ण राधा तथा सुपथ एकांकी उपस्थित किये। जो अति मनोरंजक तथा चित्ताकर्षक थे और शिक्षाजनक भी। कटक के जैन युवकों की ओर से परिवर्त्तन ड्रामा रखा गया। जिसने प्रत्येक दर्शकको मन्त्रमुग्ध कर दिया। उस समय की छटा अभी तक भी आँखों के आगे कभी-कभी आ जाती है। उस सांस्कृतिक प्रोग्राम ने सम्मेलन में एक नवीन ही रस की सृष्टि कर दी। शायद दर्शक-गण उसे कभी भूल नहीं सकेंगे। वालासोर की वालिकाओं ने सम्वादों के सुन्दर कार्यक्रम दिये। जिन्हें जनता ने वेहद पसन्द किया। रात्रि की यह सभा उल्लासमय क्षणोमें समाप्त हुई। और

अगली उषा रविवार के लिए नये प्रोग्राम का सन्देश लेकर आई। तारीख २९ रविवार सम्मेलन का अन्तिम दिन था। उस दिन छात्र तथा छात्राओं की भाषण प्रतियोगिता रखी गई। जिसमें कटक के अधिकांश स्कूलों के छात्र एवं छात्राओं ने भाग लिया। प्रतियोगिता के विषय थे :—

(१) नैतिकता शिक्षा का प्राण है।

(२) सदाचार ही जीवन का सौरभ है।

हिन्दी, गुजराती तथा उड़ीआ किसी भी भाषा में बोलने की पूरी स्वतन्त्रता दी गई। प्रोग्राम बड़ा ही सुन्दर रहा। इसके निर्णय के लिए भुवनेश्वर वाणी विहार के दो प्रोफेसर प्रह्लाद प्रधान, महान्ती तथा फकीरमोहन कालेज, बालासोर के हिन्दी विभाग के प्रमुख श्री चन्द्रसेन जैन नियुक्त किये गये। जनता ने बच्चों के विचारों को बड़ी शान्ति एवं धैर्य से सुना और उनके उत्साह बढ़ाने में अपना पूरा योगदान किया।

वैसे तो मैं प्रतिदिन कुछ बोलता रहा किन्तु सम्मेलन अन्तिम दिन जो मैंने समाज के नाम सन्देश दिया उसका सारांश आपकी सेवा में प्रस्तुत कर रहा हूँ। श्री विजय मुनि जी के संगीतिका के पश्चात् ही प्रायः प्रवचन आरम्भ होता है। मैंने संदेशात्मक रूप में दो शब्द उपस्थित करते हुए कहा :—

हम मुनि-द्वय को आज की भूतपूर्व राजधानी कटक के

इस जैन-भवन के विशाल मण्डप में अपने समक्ष वृहद् जन-समूह को देखकर अति प्रसन्नता हो रही है। उड़ीसा में सैंकड़ों वर्षों के पश्चात् यह प्रथम सम्मेलन हो रहा है। यह हम सबके लिए और भी अधिक हर्ष की बात है कि जैन-धर्म का सोया हुआ गौरव आज पुनः इस धरती पर जाग रहा है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के निर्माण में ही उसका निर्माण निहित है। व्यक्ति वैयक्तिक रूप से अपने जीवन के बारे में अनेक बार सोचता है, किन्तु कभी समूचे समाज के लिये सामूहिक रूप से भी सोंचना पड़ता है।

कुछ लोगों का विचार है कि आज देश में सम्मेलन तो बहुत होते हैं, किन्तु कोई ठोस परिणाम नहीं निकलता। इसका आशय यह है कि सम्मेलन तो अवश्य हों, किन्तु सम्मेलन के पावन उद्देश्य को साकार बनाने के लिये सदैव सचेष्ट रहना चाहिये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रचनात्मक कार्यों से ही समाज की निष्ठा बन सकती है, केवल कागजी कार्यवाही से नहीं।

इस सम्मेलन का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य तो समस्त जैनों को संगठित करना और भगवान महावीर के अहिंसा तथा सत्य के उच्चतम सिद्धान्तों को वाणी, लेखनी तथा अपने आदर्श जीवन से प्रसार करना है। जैन-शासन में संघ शक्ति को सर्वोपरि सत्ता माना गया है। जैन-धर्म के नन्दी-सूत्र में 'संघ महा मन्दिरं वन्दे' संघरूपी मन्दराचल की वन्दना की गई है। वास्तव में संघ-शक्ति समस्त गृहस्थ-वर्ग तथा श्रमण

स्वागत करता है
दर्शन
ज्ञान
चरित्र
जय रत्नत्रय
अहिंसा
परमो
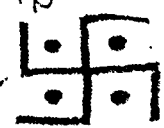
दार्शनिक प्रवक्ता श्री मनोहर मुनि जी म० 'कुमुद' सम्मेलन पर अपना संदेश दे रहे हैं। मंच पर शान्ति भाई अम्बानी बम्बई वाले, श्री विजय सिंह जी नाहर भूतपूर्व उपमुख्य मंत्री प० बंगाल, सेठ अचलसिंह जी एम० पी०, श्री बाबू भाई सेठ, श्री चम्पक लाल मेहता, श्री मदन लाल जी नाहटा आदि बंधु दिखाई दे रहे हैं।

बच्चों, बहनों व माताओं का उमड़ता हुआ एक सागर प्रवचन श्रवन की गम्भीर मुद्रा में ।

वृन्द के आचार-विचार की संरक्षिका होती है। सम्मेलन समाज को जागृत करने तथा उसे अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों की ओर मोड़ने के लिये ही किये जाते हैं। हम दोनों मुनि मार्ग की कठिनाइयों को पार करके आपके पास पहुँचे हैं। भविष्य में संत-समाज इधर सुगमता से विचर सके इसका एक यह भी पुनीत लक्ष्य है। साधुओं के सम्पर्क में आने से ही भावी पीढ़ी में धार्मिक संस्कारों का बीजारोपण हो सकता है।

चातुर्मास भर हमने जो मन्थन किया है उसका नवनीत यह विराट सम्मेलन है। और इस सम्मेलन का भी सुफल 'अहिंसा स्तूप भवन' के रूप में एक दिन अवश्य सामने आयेगा। मुझे आशा है कि कटक एक दिन श्रमण-संस्कृति का महान केन्द्र वनेगा और अखिल पूर्व तथा दक्षिण भारत को आध्यात्मिकता का प्रकाश देगा।

इस सम्मेलन के प्रधान वावूलाल सेठ तथा वेणी भाई मेहता आदि धर्म-वन्धुओं ने जिस उत्साह से सम्मेलन के भार को उठाया है वह चिरस्मरणीय रहेगा। सेठ अचलसिंह जी वृद्धावस्था में भी आपके आमन्त्रण को स्वीकार करके यहाँ पहुँचे हैं इससे सहज में ही आपकी धर्म-भावना तथा समाज-सेवा का परिचय मिलता है। मैं अपनी ओर से तथा श्री विजय मुनि जी की ओर से सम्मेलन के उद्देश्यों की सफलता के लिये शुभ कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि इस सुअवसर पर गठित यु० ए० पी० जैन कान्फ्रेंन्स अवश्य रचनात्मक कार्य

करके दिखायेगी तथा विश्व के समक्ष प्रेम, एकता तथा समाज-सेवा का सजीव उदाहरण उपस्थित करेगी।

मेरे साधारण से सन्देश के दो शब्दों के पश्चात् भाषण प्रतियोगिता में तथा रात्रि के सांस्कृतिक कार्यक्रम में भाग लेने वाले छात्र व छात्राओं को यथायोग्य पुरस्कार वितरण किये गये। ये पुरस्कार कलकत्ता के शान्ति भाई संघवी के कर-कमलों द्वारा दिलवाये गये। सेठ अचल सिंहजी तथा विजय सिंहजी नाहर को कटक श्री संघ ने चान्दी के दो सुन्दर उपहार भेंट किये। ये उपहार वेनी भाई मेहता तथा कलकत्ता संघ के प्रमुख केशव भाई खण्डेरिया के हाथों से दिलवाये गये।

इस प्रकार सम्मेलन का तीन दिन का कार्यक्रम अत्यन्त उत्साह, प्रेम तथा उल्लासमय क्षणों में समाप्त हुआ। जिस उत्साह से सम्मेलन को आरम्भ किया गया था उसी उत्साह के साथ उसे पूरा किया गया। निभाया गया। कोई गल पड़ा ढोल नहीं बजाया गया। बल्कि सबने हार्दिक सहयोग दे कर इसे पूर्ण रूपेण सफल बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। इस सम्मेलन के समस्त सहयोगी भी धन्यवाद के पात्र हैं। शासन देव की कृपासे, पूज्य महाराज श्री जी की आशीर्वाद से तथा आप सब महानु-भावों की शुभ कामनाओं से तीन दिन पूरी शान्ति बनी रही। किसी प्रकार को कोई गड़बड़ी नही हुई। किसी का कोई नुकसान नहीं हुआ। भोजन आदि की व्यवस्था ठीक चलती रही। किसी

श्री वेणी भाई मेहता श्री विजय सिंह जी नाहर (भूतपूर्व उपमुख्य मन्त्री प० बंगाल) को चान्दी का उपहार अर्पण करते हुए।

श्री केशव भाई खण्डेरिया प्रमुख गुजराती जैन संघ कलकत्ता सेठ अचल सिंह जी को चान्दी का उपहार भेंट करते हुए।

श्री मदनलालजी नाहटा श्री विजय सिंह जी नाहर को अभिनन्दन पत्र देते हुए।

श्री चम्पक भाई मेहता सेठ सिंह जी को मान-पत्र देते

को किसी प्रकार की शिकायत करने का कोई कारण नहीं मिल सका। हर एक छोटा बड़ा बस प्रशंसा ही प्रशंसा कर रहा था। और कटक श्री संघ को सेवा, भक्ति, उदारता तथा धर्म भावना की दाद दे रहा था । सम्मेलन को हुए महीनों गुजर गये हैं। किन्तु लोगों के हृदयों में अभी तक उसकी संस्मृतिएं उसी तरह तरोताज़ा हैं। वर्षों तक भी ये मिटनेवाली नहीं और युगों-युगों तक यह सम्मेलन जैन इतिहास तथा विशेषकर उत्कल के इतिहास की शोभा बनकर रहेगा।

पत्र काफी बड़ा हो गया है। किन्तु घर बैठे हुए सम्मेलन देखना कोई आसान काम नहीं। आखिर कुछ तो लिखना ही पड़ेगा। अधूरी बात में तो कोई मज़ा नहीं आता। लीजिये शाम के ५ बज गये हैं। गोचरी का टाइम होने चला है। लेखनी अपने उद्‌गारों का स्रोत अब रोक लेना चाहती है। जैन तीर्थ उदयगिरि खण्डगिरि, उड़ीसा की राजधानी भुवनेश्वर तथा पुरी धाम की अभी सैर करनी बाकी है। इसलिए आज की बची स्याई कल के पृष्ठ लिखने के काम आयेगी। सब को यथा योग्य वन्दना अर्ज करें और सुखसाता पूछें। योग्य सेवा लिखते रहा करें। यह पत्र कल पत्र-पात्र में होगा और कापी के नये पृष्ठ मेरी लेखनी के अधरों पर—अच्छा अलविदा

आपका

मुनि मनोहर "कुमुद"

भुवनेश्वर

ख़ुदी को अपनी मिटा चुके हैं
अब अपनी हस्ती मिटा रहें हैं।
हटा के रस्ते से हम यह पत्थर
करीब मंज़िल के जा रहे हैं ॥

—नफीस देहलवी

★

ठोकर किसी पत्थर से
अगर खाई है मैंने
मंज़िल का निशाँ भी—
उसी पत्थर से मिला है ॥

बिस्मिल सईदी

★

लाख पेचीदा हो राहे ज़िन्दगी
अहले हिम्मत के कदम रुकते नहीं।
कदम चूम लेती है खुद आ के मंज़िल
मुसाफ़िर अगर आप हिम्मत न हारे ॥

—अनवर

★

कटक
से
जगन्नाथ पुरी
या
पुरी सागर
के
किनारे

पत्र !

(१२)

भुवनेश्वर

१३-७-७१

सर्वजनप्रिय श्री भद्र मुनि जी

सस्नेह सुख साता।

श्रद्धेय महाराज श्री जी के पादाम्बुजों में हम दोनों मुनियों की ओर से वन्दना अर्ज करके सुखसाता की मंगल पृच्छा करें। कल कुछ लिखने को कई बार लेखनी अंगुलियों में पकड़ी। किन्तु फिर कोई न कोई ऐसा काम आ गया कि वहीं कलम छोड़ देनी पड़ी। किसी-किसी दिन इतना व्यस्त हो जाता हूँ कि एक पंक्ति भी लिख नहीं पाता। आज निवृति के क्षणों में हूँ। इसलिये सुबह-सुबह ही लिखने बैठ गया हूँ। सम्मेलन के पश्चात् हम कुछ दिन कटक में और ठहर गये। श्री संघ के आग्रह पर। चातुर्मास में तो वर्षा का खूब ज़ोर रहता है। पर्युषण पर्व से पहले कुछ व्याख्यानों का ठाठ भी ज़ोरदार होता है। और फिर इधर सम्मेलन की बातचीत चल पड़ी। हम उसमें उलझे रहे। इसलिए चातुर्मास भर में हम कटक में इधर-उधर घूम कर कुछ भी न देख सके। कुछ दिन हम इसलिए रुक गये कि कटक शहर का भी कुछ अध्ययन कर लिया जाये।

कटक भारत का बड़ा पुराना शहर है। उड़ीसा की भूतपूर्व राजधानी। लगभग चार लाख की जनसंख्या का यह महानगर तीन ओर से महानदी तथा काठजोड़ी से घिरा हुआ है। कटक विलकुल सीधा सा नाम। उलटा-सीधा कैसे भी पढ़ें, बस वही कटक। वहुत निचान में बसा हुआ है। कभी-कभी महानदी के पानी से इसे खतरा भी हो जाता है। काठजोड़ी के आगे तो पत्थर की मज़बूत दिवार बनी है। जिसे कटक की रक्षा दिवार **Safety Wall** कहा जा सकता है। रानीहाट, बालूबाज़ार, मारवाड़ी पट्टी, चौधरी बाजार, चान्दनी चौक तथा बक्शो बाज़ार इसके मुख्य एरिया हैं। यहाँ का हाईकोर्ट तथा स्टेडियम दर्शनीय हैं। यहाँ फिलिग्री **Filigree** का काम सुप्रसिद्ध है। चान्दी के तार का ताजमहल, कुतुबमीनार, पावापुरी का जल मन्दिर, अर्जुन का रथ, इण्डिया गेट, जगन्नाथजी का मन्दिर तथा अन्य अनेक प्रकार की अनुपम चीजें आपको चान्दी की यहाँ मिल सकती हैं। केवल आँचल में पैसे चाहिये। शहर में सफाई का वहुत कम ध्यान रखा जाता है। मच्छरों के भयानक आक्रमणों से यहाँ किसी का भी बचना कठिन है। वैसे तो सारे उड़ीसा में सदा ही मच्छरों का उपद्रव रहता है किन्तु वर्षा-ऋतु में यह प्रकोप और भी अधिक बढ़ जाता है।

बंगला की तरह ये लोग भी मूर्त्तिकला में वहुत प्रवीण हैं। यहाँ मूर्त्तिएं इतनी सुन्दर बनाई जाती हैं कि जिन्हें देखकर मनुष्य मन्त्रमुग्ध हो जाता है। एक वार तो असली-नकली

का भेद करना भी मुश्किल हो जाता है। उड़ीसा के लोग दुर्गा तथा जगन्नाथजी के उपासक हैं। दशहरा के पावन प्रसंग पर बड़ी शानदार झांकियाँ यहाँ बनाई जाती हैं। जिन्हें 'मेड़' कहते हैं। ये एक दूसरे से बढ़ चढ़कर आकर्षक बनाई जाती हैं। गाजे-बाजे के साथ इन मेड़ों को बाज़ार में घुमाया जाता है और एकादशी के दिन महानदी तथा काठजोड़ी में इन मूर्त्तियों का विसर्जन कर दिया जाता है। कटक उड़ीसा का बड़ा शहर है। इसलिए यह सब कुछ यहाँ अधिक समारोह से किया जाता है। कटक की दिवाली भी बड़ी निराली ही होती है। सबलोग अपनी दूकानों के आगे केले के स्तम्भ खड़े करके सजाते हैं। बीच में एक बाँस बाँधकर दीप जगाते हैं। सारा बाज़ार एक हरे भरे बाग की तरह मालूम होता है।

चातुर्मास में तथा लगभग एक मास बाद में ठहर कर जो कुछ देखा, सुना और जो समझ सका, वह आपकी जानकारी के लिए लिख दिया है।

कटक श्री संघ की श्रद्धा ने सदैव हमको रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु नियम इधर हमें विहार के लिए प्रेरित कर रहा था। श्रद्धा अवश्य बड़ी है किन्तु नियम श्रद्धा से भी ऊपर रहता है। कर्त्तव्य तथा आदर्श को देख कर ही व्यक्ति के प्रति श्रद्धा जागती है। फ़िर आधार की अवहेलना कोई कैसे कर सकता है? जब आदर्श गिर जाता है तो श्रद्धा भी कैसे टिक सकती है? आधार के बिना आधेय कैसे रह सकता है? जो इस

तथ्य को समझता है। वह मोह में नहीं उलझता। उसके सामने अपने जीवन का लक्ष्य सदैव उपस्थित रहता है। वह उसकी ओर सदैव गतिशील रहता है। कोई भी स्नेह-बंधन उसके पगों का बन्धन नहीं बन सकता। यही मुनि का विहग की तरह उन्मुक्त विहार है। अप्रतिबद्ध गति है।

हमने ६ दिसम्बर १६७० को कटक से पुरी की ओर विहार किया। सैंकड़ों बहिन व भाई ३ मील आगे खापरिया ग्राम तक हमारे साथ चलकर आए। आखिर गृहस्थ सन्त के साथ कबतक चल सकते हैं? मोहयुक्त कदमों का मोहमुक्त चरणों से भला क्या मुकाबला? वे सब संध्या को अपने-अपने घरों की ओर और हम एक रैन बसेरा करके अगली ऊषा की पहली किरण के साथ अपनी मंज़िल पर फिर आगे की ओर। कटक से पुरी हम कहाँ-कहाँ रुके व ठहरे? वह सब निम्न तालिका में माइलेज के साथ दे रहा हूँ। वैसे तो आप निकट भविष्य में इधर आने वाले नहीं हैं। किन्तु फिर भी कोई सन्त चरण इधर उड़ीसा की धरती पर यदि प्रवेश करे और पुरी सागर के नजारे देखने के लिए यदि किसी के नयन उत्सुक हों तो मेरी यह लेखनी उसके लिए सहायिका हो सकती है। यह विहार जैन भवन, काज़ी बाज़ार से कर रहा हूँ।

ग्राम व नगर	मील	ठहरने का स्थान
१। खापुरिया	३	एक उड़ीया का मकान

ग्राम व नगर	मील	ठहरने का स्थान
२। तिलंगापीठ	५	बी० के० जेना का मकान
३। फूल नखरा	३	सड़क पर डाक बंगला
४। भुवनेश्वर (राजधानी)	८	झुनझुनूवालों के बाग में
५। खण्डगिरि उदयगिरि (दि० जैन तीर्थ)	५	दि० जैन धर्मशाला
६। जांवला	८	एक देव स्थान
७। जटनी	६	जैन स्थानक
८। पोपली	६	श्री नरसिंह दास के मकान में (सड़क पर ही)
६। सातशंख	६	ग्राम की एक क्लब में
१०। साखीगोपाल	४	मुरलीधर मोदी की राइस मिल्ज़
११। चन्दनपुर	४	श्री गंगाधर साहू के बाग में
१२। जगन्नाथ पुरी	८	गौशाला भवन में

यह मार्ग जटनी से होकर जाता है। पूरा ७२ मील पड़ता है। किन्तु यदि भुवनेश्वर से पीपली होकर जायें तो ५७ मील ही रह जाता है। १५ मील की बचत हो जाती है। किन्तु हम क्योंकि जटनी होकर पुरी गये थे। इसलिए हमारे पगों को कुछ कसरत ज्यादा करनी पड़ी।

खापुरिया ग्राम से हम फूलनखरा आकर ठहरे। फूल

नखरा में फूलों सा नखरा तो कुछ नहीं। एक साधारण सा ग्राम है। किन्तु यहाँ का डाक बंगला अवश्य सुन्दर है। शायद उसमें कुछ दिन रहने से किसी को नखरा आ जाता हो। हम तो एक रात ही वहाँ ठहरे थे। हमें तो ऐसा कुछ नहीं हुआ। सुबह सूर्य भगवान के दर्शन के साथ ही वहाँ से चले और सीधा भुवनेश्वर आकर इसी झुनझुनूवालों के बगीचे में ठहरे। यह वही स्थान है जहाँ हम पहले ८-१२-७० को आकर एक मास के लिए रुके थे। इसी बगीचे के घने वृक्षों की शीतल छाँह तले अब फिर मैं बैठकर आपके लिए अपनी यात्रा के पन्ने लिख रहा हूँ। हृदय ने कभी ऐसा सोचा भी नहीं था कि हमें फिर यहीं आकर वर्षावास गुजारना होगा। समय बड़ा बलवान होता है। मनुष्य स्वतन्त्र होता हुआ भी सदा भवितव्यता से बन्धा रहा है। सर्वज्ञ के बिना इसे कौन समझ सकता है?

यह झुनझुनूवालों का बगीचा सारे भुवनेश्वर में खूब प्रसिद्ध है। नये रेलवे स्टेशन के बिलकुल निकट। आस-पास का वातावरण बड़ा शान्त तथा साधनानुकूल। वैसे तो एकान्तता अपने ही मन की स्थिति पर अवलम्बित करती है। किन्तु फिर भी बाह्य वातावरण अन्तः समाधि में अवश्य सहायक होता है। हमें यहाँ आते ही बड़ी शान्ति मिली। और हमारे मन को यह स्थान बहुत भा गया। चारों ओर फूलों और फलियों के मनोरम दृश्य। बिखरती हुई सुरभि। चारों ओर मखमली घास के फर्श। दूर-दूर तक हरे-भरे घने वृक्षों की

पंक्तिएं तथा उनकी घनी छाया। पंछियों के सुहावने तथा सुखद कलरव। ये सब मिलकर एक मनोहारी दृश्य का सृजन कर देते हैं। एक ओर बना हुआ हाल कमरा हमें मिल गया ठहरने को। और दूसरी कक्षा में उनका अपना निवास बंगला है। संयम के अनुसार समस्त सुविधाएं यहाँ हैं। यह स्थान तो सुन्दर तथा आकर्षक है, किन्तु सबसे अधिक मनोहर तथा मनमोहक है इस परिवार का स्वभाव तथा व्यवहार। बाबू जुगल किशोर जी, उनकी धर्म पत्नी सुशीला देवी तथा माता श्रीमती दुर्गा देवी जी आदि समस्त परिवार प्रभु-परायण तथा सेवानिष्ठ है। दान, पुण्य तथा पाठ-जाप तो इनके घर में चलता ही रहता है। साधु-सन्तों के प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति है इनके मन में। राउरकेला तथा बारंग में इनकी "उड़ीसा इण्डस्ट्री" Orissa Industry के नाम से बहुत बड़ी फैक्टरी है। भगवान की इन पर अपार कृपा है। प्रभाव तथा प्रभुत्व का उत्कर्ष इनकी पुण्य राशि का परिचायक है।

हम यहाँ कुछ दिनों के लिये ही आए थे। किन्तु पूरा एक महीना हम यहाँ से आगे नहीं बढ़ सके। यहाँ वैसे तो जैनों के दो ही घर हैं। किन्तु यहाँ के राजस्थानी, पंजाबी तथा हरियानवी भाइयों ने भी जो श्रद्धा, भक्ति तथा सेवा का आदर्श रखा वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। प्रवचन में उपस्थिति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली गई। श्री लालचन्द जैन तथा टीकमचन्द जी का इस दिशा में सराहनीय प्रयास कभी भी हृदय से उतर नहीं सकता। कई बार बीच में विहार करने का

विचार किया किन्तु श्रद्धा के धागों ने पाओं को उठने नहीं दिया। एक कल्प तक रहना ही पड़ा।

"वस में होते आए भगवान भक्त के" सच, यहाँ कुछ ऐसी ही स्थिति वन गई थी। सबने एक स्वर से आगामी अर्थात् १९७१ के चातुर्मास के लिये ज़ोरदार प्रार्थना की। श्री टीकमचन्दजी भाई ने जनता की ओर से चातुर्मास का विनती-पत्र दिया। हमें इस पर कुछ आश्चर्य भी हुआ। क्योंकि अपने राम को ऐसा कुछ ख्याल नहीं था कि भुवनेश्वर में चातुर्मास की स्थिति भी वन सकती है और उसके लिए अत्यधिक आग्रह भी हो सकता है। किन्तु समय की गति को कोई आज तक पहचान नहीं सका। सच, मैं समय के प्रभाव को प्रत्यक्ष अपने सामने देखकर कुछ आश्चर्य चकित हो रहा था। यह विनति भी कोई ऊपर के मन से नहीं थी। वल्कि अन्तरङ्ग हृदय की एक आवाज़ थी। उसमें वल था, वेग था और शक्ति थी उस प्रार्थना में दूसरे के हृदय में उतरने की। निर्णय तो हमने कुछ दिया नहीं। उत्तर तो वह ही दिया जो प्रायः सन्तलोग देते हैं। किन्तु यह चातुर्मास की पुरज़ोर प्रार्थना ठेठ पुरी तक हमारे साथ-साथ चलती ही रही। यह भावना की परिपक्वता का एक प्रवल प्रमाण था।

हमने भुवनेश्वर से विहार करने से पूर्व भुवनेश्वर के प्राङ्गण में कुछ घूम-फिर कर उसका अध्ययन किया। उड़ीसा की इस

पंक्तिएं तथा उनकी घनी छाया। पंछियों के सुहावने तथा सुखद कलरव। ये सब मिलकर एक मनोहारी दृश्य का सृजन कर देते हैं। एक ओर बना हुआ हाल कमरा हमें मिल गया ठहरने को। और दूसरी कक्षा में उनका अपना निवास बंगला है। संयम के अनुसार समस्त सुविधाएं यहाँ हैं। यह स्थान तो सुन्दर तथा आकर्षक है, किन्तु सबसे अधिक मनोहर तथा मनमोहक है इस परिवार का स्वभाव तथा व्यवहार। बाबू जुगल किशोर जी, उनकी धर्म पत्नी सुशीला देवी तथा माता श्रीमती दुर्गा देवी जी आदि समस्त परिवार प्रभु-परायण तथा सेवानिष्ठ है। दान, पुण्य तथा पाठ–जाप तो इनके घर में चलता ही रहता है। साधु-सन्तों के प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति है इनके मन में। राउरकेला तथा वारंग में इनकी "उड़ीसा इण्डस्ट्री" Orissa Industry के नाम से वहुत वड़ी फैक्टरी है। भगवान की इन पर अपार कृपा है। प्रभाव तथा प्रभुत्व का उत्कर्ष इनकी पुण्य राशि का परिचायक है।

हम यहाँ कुछ दिनों के लिये ही आए थे। किन्तु पूरा एक महीना हम यहाँ से आगे नहीं वढ़ सके। यहाँ वैसे तो जैनों के दो ही घर हैं। किन्तु यहाँ के राजस्थानी, पंजाबी तथा हरियानवी भाइयों ने भी जो श्रद्धा, भक्ति तथा सेवा का आदर्श रखा वह कभी भी भुलाया नहीं जा सकता है। प्रवचन में उपस्थिति दिन प्रतिदिन वढ़ती ही चली गई। श्री लालचन्द जैन तथा टीकमचन्द जी का इस दिशा में सराहनीय प्रयास कभी भी हृदय से उतर नहीं सकता। कई वार वीच में विहार करने का

विचार किया किन्तु श्रद्धा के धागों ने पाओं को उठने नहीं दिया। एक कल्प तक रहना ही पड़ा।

"बस में होते आए भगवान भक्त के" सच, यहाँ कुछ ऐसी ही स्थिति बन गई थी। सबने एक स्वर से आगामी अर्थात् १९७१ के चातुर्मास के लिये ज़ोरदार प्रार्थना की। श्री टीकमचन्दजी भाई ने जनता की ओर से चातुर्मास का विनती-पत्र दिया। हमें इस पर कुछ आश्चर्य भी हुआ। क्योंकि अपने राम को ऐसा कुछ ख्याल नहीं था कि भुवनेश्वर में चातुर्मास की स्थिति भी वन सकती है और उसके लिए अत्यधिक आग्रह भी हो सकता है। किन्तु समय की गति को कोई आज तक पहचान नहीं सका। सच, मैं समय के प्रभाव को प्रत्यक्ष अपने सामने देखकर कुछ आश्चर्य चकित हो रहा था। यह विनति भी कोई ऊपर के मन से नहीं थी। बल्कि अन्तरङ्ग हृदय की एक आवाज़ थी। उसमें बल था, वेग था और शक्ति थी उस प्रार्थना में दूसरे के हृदय में उतरने की। निर्णय तो हमने कुछ दिया नहीं। उत्तर तो वह ही दिया जो प्रायः सन्तलोग देते हैं। किन्तु यह चातुर्मास की पुरज़ोर प्रार्थना ठेठ पुरी तक हमारे साथ-साथ चलती ही रही। यह भावना की परिपक्वता का एक प्रवल प्रमाण था।

हमने भुवनेश्वर से विहार करने से पूर्व भुवनेश्वर के प्राङ्गण में खूब घूम-फिर कर उसका अध्ययन किया। उड़ीसा की इस

नयी राजधानी को जितना मैं कुछ दिनों में देख व समझ सका उसकी एक झीनी सी झाँकी उपस्थित कर रहा हूँ। इसे साक्षात् तो आप जब देखेंगे तब देखेंगे ही, किन्तु अभी मेरे नेत्रों से एक झलक इसकी दूर बैठे तो देख ही लीजिए।

कटक से भुवनेश्वर लगभग १९ मील दूर है। कलकत्ता से रेलमार्ग द्वारा २७२ मील दक्षिण पूर्व में है। चण्डीखोल आदि देखते हुए सड़क के रास्ते से कलकत्ता से भुवनेश्वर ३१४ मील पड़ता है। दो चार मील की कमी-बेशी भी हो सकती है। क्योंकि पगों द्वारा लिया गया माप है यह। किसी फीता से मापा हुआ नहीं।

भुवनेश्वर आज कल उड़ीसा की राजधानी है। पुराना भुवनेश्वर तो बस पुराना ही है, किन्तु नया भुवनेश्वर तो सब नया ही है, जो नया तो है ही किंतु खुला, सुन्दर तथा स्वच्छ भी। इसे भुवनेश्वर टाऊन कहते हैं। यह पंजाब के चण्डीगढ़ की तरह एक भव्य रूप लेकर उभर रहा है। कुछ ही वर्षों में यह उड़ीसा का सुन्दरतम नगर बनेगा। यदि शान्ति के क्षणों में इसे विकसित होने का अवसर मिलता रहा तो।

भुवनेश्वर उड़ीसा के पांच धर्म-क्षेत्रों में से एक महान धर्म क्षेत्र है, जिसे शिव-क्षेत्र कहा जाता है। यह नगर कलिङ्ग देश की प्राचीनतम स्थापत्य-कला के अनुपम प्रयोगों का एक महान केन्द्र है। यह सचमुच मन्दिरों का शहर है। हजारों

छोटे वड़े शिव मन्दिर यहाँ हैं। कुछ मन्दिर बहुत ही दर्शनीय हैं। दुनिया भर के पर्यटक यहाँ आते हैं. इन मन्दिरों की प्राचीन झाँकी देखने के लिए।

यहाँ के सुप्रसिद्ध मन्दिर हैं—

१। लिङ्गराज मन्दिर।

२। केदार गौरी कुण्ड।

३। मुक्तेश्वर मन्दिर।

४। अनन्त वासुदेव मन्दिर (विन्दु सरोवर के विलकुल सामने)

भुवनेश्वर के ये धार्मिक स्थान विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। लिङ्गराज मन्दिर सचमुच ही उड़ीसा की स्थापत्य–कला का एक सजीव उदाहरण है। इसका विस्तार क्षेत्र तथा चारों ओर का मनोहरी दृश्य सभी के हृदयों को मन्त्र मुग्ध कर देता है, किन्तु द्वार पर वैठे भिखारी तथा खाने-पीने की चीजें वेचने वालों की अस्वच्छता सारे आकर्षण को समाप्त कर देती है। मन्दिर में प्रायः सारा दिन दर्शकों की भीड़ लगी रहती हैं। गणेश जी तथा नंदी वैल की विशाल प्रतिमाएं कलात्मक हैं। मन्दिर की ऊँचीं दिवारों पर चित्रकारी मनोहार्य है। इन भित्तियों पर भिन्न भिन्न देवी–देवताओं की मूर्त्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। भगवान के पुजारी अपने ग्राहकों की प्रतीक्षा में खड़े रहते हैं और एक एक के पीछे हाथ धो कर पड़ जाते हैं। जो मूर्त्ति के आगे दो

टके नहीं रखता उसे दुर्वचन भी सुनने पड़ते हैं। ऐसी स्थिति में दर्शन की जगह घर्षण हो जाता है।

इन लोगों को भगवान की अपेक्षा माया से अधिक प्रेम है। सभी धर्म स्थान ही पुजारियों की आजीविका तथा दर्शकों के लिये सैर तथा मनोरञ्जन के स्थान मात्र बन गये हैं, किन्तु इनका वास्तविक उद्देश्य प्रायः विलुप्त हो चुका है। इतना कुछ होने पर भी इन स्थानों ने भारतीय संस्कृति तथा कला-गौरव को शताब्दियों से अक्षुण्ण रखा हुआ है।

हम जब इस मन्दिर में गणेश जी की मूर्त्ति देख रहे थे तो एक पुजारी ने हमें तिलक लगाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया, किन्तु हमने उसे रोका और एक क्षण आँख भर कर उसकी ओर देखा। सच, उसका मुख म्लायमान हो गया—एक दम फीका पड़ गया। उसे हमसे कुछ मिलने की आशा थी, किन्तु उसकी आशा निराशा में बदल गई। हम तो चले आए किन्तु वह कुछ बुड़-बुड़ अवश्य करता रहा। उस विचारे को क्या पता कि जैन मुनि तो अकिंचन बादशाह ही होते हैं। इन से मांगना तो अपनी ही तौहीन है।

मुक्तेश्वर मन्दिर सुन्दर है। कलात्मक तथा सांस्कृतिक है। इसके समीप एक जल कुण्ड है। वर्ष में एक विशेष दिन पर कहते हैं इसके जल से एक कलश की बोली होती है। लोगों का विश्वास है कि उस पानी को पीने से जीवन की लता अवश्य

फलवती होती है। अन्ध-विश्वास के पास विवेक की आँखें नहीं हुआ करतीं, तभी तो भोले-भाले लोग छल के चक्रव्यूह में फंस कर अपना सर्वस्व लुटा बैठते हैं। अन्ध-विश्वास जब बहुजन-विश्वास बन जाता है तो उसका प्रतिकार करना कठिन हो जाता है।

केदार गौरी कुण्ड का जल दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। उससे आगन्तुक गृहस्थ पानी निकाल-निकाल कर श्रद्धा से पी रहे थे और अपने शरीर पर उसके छींटे भी दे रहे थे। पूछने पर उन्होंने बताया कि यह जल पवित्र है रोग-नाशक है और स्वास्थ्य-वर्धक है। लोगों के विश्वास को देखकर ऐसा लगता था मानों सारा आरोग्य इसी कुण्ड में समाया हुआ हो। मन्दिर का कोई विशेष आकर्षण नहीं, किन्तु फिर भी दर्शक-गण की चहल-पहल तो रहती ही है। पीछे की ओर एक तालाब बना है, जहाँ प्रायः लोग स्नान करते रहते हैं।

राजा रानी का मन्दिर ११वीं शताब्दी का है। बिलकुल निराश तथा उदास सा। जैसे कि अपने अतीत वैभव के लिये आँसू बहा रहा हो। उड़ीसा की स्थापत्य-कला का यह भी एक उच्चतम प्रयोग माना जाता है।

इस राजा-रानी-मन्दिर में अब तो एक भिखारी भी नहीं बैठा। इसके अन्दर कोई मूर्त्ति नहीं। बाहर दीवारों पर चित्रकारी में मूर्त्तियों का बाहुल्य है जो भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं

की हैं। भुवनेश्वर के रवीन्द्र मण्डप, गवर्नर हाऊस तथा राजकीय संग्रहालय State Museum आदि स्थान दर्शनीय हैं।

संग्रहालय अभी अपनी किशोर अवस्था से यौवन की ओर कदम बढ़ा रहा है। कलकत्ता के सरकारी म्यूजियम के सामने यह एक नन्हा सा बच्चा ही मालूम होता है, किन्तु उड़ीसा राज्य की अपेक्षा से यह बहुत है, क्योंकि अभी प्रगति की राहें ही तो पार कर रहा है।

इस संग्रहालय में जैन तीर्थंकरों की कुछ प्रतिमाएं भी रखी हैं। ये सब मूर्त्तियां उड़ीसा के बालासोर जिला के भद्रक नगर के चरम्पा क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं। ये मूर्त्तियां भगवान ऋषभ देव, अजितनाथ, चन्द्र प्रभु, शान्ति नाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर स्वामी की हैं। ये सब 8 वीं 9 वीं तथा 12 वीं शताब्दी की हैं।

हम कटक आते हुए भद्रक ४ दिन रुके थे और एक रैन बसेरा चरम्पा में किया था। भद्रक में गुजराती भाइयों के कुछ घर हैं। ये लोग जैन न होने पर भी जैनों जैसे ही हैं। चरम्पा में एक-दो घर देहरावासी जैनों के भी हैं।

संग्रहालय के अधिकारी नीलमणि मिश्र ने बताया कि चरम्पा किसी समय जैनों का एक प्रसिद्ध क्षेत्र था। वहाँ शरम्प या छरम्प नाम के एक जैन मुनि रहते थे। वहाँ के जैन-मन्दिर

में चौबीस तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ थीं। उड़ीसा में जैन-धर्म के अस्तकाल में लोग जैन तीर्थंकरों की पूजा अन्य देवी देवताओं के रूप में करते रहे। कालक्षेप से कुछ मूर्त्तियाँ भूगर्भ में चली गईं। उसने कहा कि अभी तक कुछ मूर्त्तियाँ लोगों के पास हैं जिन्हें वे देते ही नहीं हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि राजाधिराजे खारवेल के समय में तथा उसके बाद काफी समय तक जैनधर्म का प्रचण्ड सूर्य उड़ीसा में अपनी प्रदीप्त रश्मिएं बिखेरता रहा है। जब पाशुपत सम्प्रदाय (शैव-धर्म) का प्रचार बढ़ा तो बौद्ध धर्म तो यहाँ से पलायन ही कर गया। जैन-धर्म उड़ीसा के सिंहासन से अवश्य अपदस्थ हुआ, किन्तु खण्डगिरि तथा उदयगिरि जैसे पर्वतों के शिखरों से इसे उतारा नहीं जा सका। यहाँ के प्राचीन जैन-मन्दिर तथा गुफाएं अभी भी अपने विलुप्त गौरव की मूक गाथा कहती हुई देखी जा सकती हैं।

मेरे इस लेख से कोई महानुभाव यह न समझ ले कि मूर्त्ति का इतिहास तो प्राचीन है, फिर इसे क्यों नहीं माना जाता? वास्तव में प्रत्येक सम्यक् ज्ञानी मूर्त्ति को मूर्त्ति मानता ही है, किन्तु जहां तक मूर्त्तिपूजा या उपासना का सम्बन्ध है, स्वयं मूर्त्ति की पूजा करनेवाले वास्तव में मूर्त्ति की पूजा नहीं करते, वे तो मूर्त्ति के माध्यम से वीतरागत्व की उपासना करके स्वयं वीतराग बनने की एक साधना मात्र करते हैं। स्थानकवासी

समाज की साधना का लक्ष्य भी वीतरागता की उपलब्धि तथा पूर्णता की संप्राप्ति ही है। विधि-भेद होने पर भी लक्ष्य-भेद कहीं नहीं है। बाह्य भेदों को लेकर हृदयों में भेद डालना आज के समन्वयवादी युग में शोभास्पद नहीं प्रतीत होता। स्थानकवासी समाज की साधना-पद्धति अनन्त अनन्त तीर्थंकरों के आत्म-ध्यान के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है। जो मूर्त्ति से कहीं प्राचीन है।

लीजिए मैंने कुछ पंक्तियों में आपको भुवनेश्वर की हलकी सी सैर करा दी है। शेष तो जब कभी आप इधर पधारेंगे तो अपने कदमों से चल-फिर कर और आँखों से देखकर ही मज़ा उठा सकेंगे। लेखनी तो विचारी सब कुछ कैसे लिख सकेगी?

हमने ७ जनवरी पौष शुक्ला एकादशी बृहस्पति के दिन सुबह ६ वजे भुवनेश्वर से विहार किया और ११ बजे खण्डगिरि जा पहुँचे। खण्डगिरि भुवनेश्वर से केवल ४॥ मील ही है। लगभग १५० वहिन व भाई हमारे साथ थे। जो सब पैदल चलकर हमारे साथ खण्डगिरि पहुँचे। जिनमें कुछ बूढ़े व बच्चे भी थे। इसलिये २ घंटे लग जाने स्वाभाविक ही थे। खण्डगिरि में हम दि० जैन धर्मशाला में ठहरे। धर्मशाला के विशाल प्राङ्गण में एक मेला सा मालूम हो रहा था। जनता के उल्लास से खण्डगिरि व उदयगिरि के पहाड़ आनन्द में नाचते हुए प्रतीत हो रहे थे। सबने दोपहर का भोजन वहीं किया। और शाम के ४-५ वजे सब अपने-अपने घरों को वापिस चले गये।

हम ११ जनवरी तक वहाँ ठहरे। और इन ४-५ दिनों में जैन धर्म के इस प्राचीन एवं ऐतिहासिक तीर्थ का जो भी पर्यवेक्षण किया वह, आपके परिचय के लिए दो शब्द लिख रहा हूँ।

शान्त तथा एकान्त प्रकृति की मृदुल अंक में खण्डगिरि तथा उदयगिरि का यह मनोरम स्थान अपना एक विशेष महत्व रखता है। उड़ीसा में शायद यही एक मात्र जैन तीर्थ है। उत्कल में जैनों के विलुप्त गौरव की मूक गाथाएं कहती हुई ये पहाड़िएं चुपचाप खड़ी हैं। आप हृदय की आँखें खोलकर ही मुखद्वारों तथा भित्तियों पर उत्कीर्ण इसकी आत्म-कथा पढ़ सकते हैं। और उत्कल में जैनत्व की प्राचीन झाँकी देख सकते हैं। खण्डगिरि तथा उदयगिरि, ये दोनों पहाड़िएं आमने-सामने हैं। बीच में एक सड़क है जो भुवनेश्वर से चन्दका जाती है। खण्डगिरि १२३ फीट Feet और उदयगिरि ११० फीट ऊँची पहाड़ी है। उदयगिरि का शिखर खण्डगिरि से १३ फीट कम है। दोनों पर्वतों पर उत्खात गुफाएं हैं। जो कभी जैन सन्यासियों के आवास के रूपमें प्रयुक्त होती थीं। पुरातत्व विभाग द्वारा यहाँ लिखे बोर्ड के अनुसार ये गुफाएं प्रथम शताब्दि पूर्व खृष्टाब्द में अपने पूर्ण वैभव से सम्पन्न थीं। और जैनश्रमण यहाँ आत्म साधना में लीन रहा करते थे। यहाँ पर लगे बोर्ड की शब्दावलिएं आपके परिचय के लिए लिख रहा हूँ—

The twin hills of Udayagiri and Khandagiri contains excavated caves utilised for Jain

monastic retreets datable from 100 B. C. to the earlier years of the Christian era. The famous inscription of Kharvela King of Kalinga occurs on the row of the rock over the Hathi Gumpha.

उदयगिरि और खण्डगिरि की युग्म पहाड़ियों में उत्खात गुफाएं जैन सन्यासियों के आवास के रूप में ई०पू० सौ वर्ष से खृष्टाब्द के आरम्भ तक उपयोग में आती रही हैं। कलिंग नरेश खारवेल का सुप्रसिद्ध अभिलेख हाथी गुम्फा के शैल-प्रान्त पर उत्कीर्ण है।

महाराजा खारवेल ने सिंहासनारूढ़ होने के १३ वर्ष पश्चात् खण्डगिरि तथा उदयगिरी पर जैन श्रमणों की साधना के लिए बहुत सी गुफाओं का निर्माण करवाया। ऐसा कहा जाता है कि कलिङ्ग की प्राचीन राजधानी शिशुपालगढ़ थी। जो इन पहाड़ियों के ६ मील दक्षिण-पूर्व में। इसीलिये यह स्थान आत्म-साधक तथा सन्तों के लिये अधिक उपयुक्त समझा जाता था। क्योंकिं राजधानी के निकट होने से किसी प्रकार से भी श्रमण वर्ग को कोई असुविधा नहीं होती थीं। अब भी उत्कल की नवीन राजधानी इससे केवल ४॥ मील की दूरी पर ही है। राजधानी के निकट होने से दर्शकों का वहाँ ताँता लगा ही रहता है। और प्रायः दिन भर रौनक बनी रहती है। बाहर के पर्यटक खण्डगिरि तथा उदयगिरि को देखे बिना शायद नहीं लौटते। उड़ीसा के समस्त ऐतिहासिक स्थानों

में इस पहाड़ी-युग्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। दूर-दूर से लोग बिना किसी भेद-भाव के इसे देखने के लिये आते हैं। श्रद्धा तथा भक्ति से भरे हृदय से वे इस तीर्थ की यात्रा करते हैं। हमने दिन के समय सदैव वहाँ चहल पहल ही देखी है। कभी सूनेपन की अनुभूति नहीं हुई। हाँ! रात्रि के अन्धियारे क्षणों में अवश्य वहाँ नोरवता का अटल साम्राज्य रहता है। योगी की योग-साधना के लिए इससे अनुकूल शायद राजधानी के निकट और कोई स्थान उपलब्ध न हो सके। उदयगिरि तथा खण्डगिरि की गुफाएं तो इतनी शान्त तथा एकान्त हैं कि किसी पंछि का कलरव भी कभी सुनाई नहीं देता वहाँ। दोनों पहाड़ियों की गुफाओं में से रानी गुफा सबसे बड़ी तथा सुन्दर है। हाथी गुफा पर राजाधिराज खारवेल का शिलालेख उत्कीर्ण है। जो युग के झकझोरों से बिल्कुल अस्पष्ट हो गया है। इस अभिलेख से खारवेल तथा जैनधर्म के सम्बन्ध में अनेकों ऐतिहासिक तथ्य प्रकाश में आए हैं। बाजाघर, छोटाहाथी, अलकापुरी, जयविजय, पणस, ठाकुरानी, स्वर्गपुरी, मंचपुरी, गणेश, बाघ, सर्प, हरिदास, जम्बेश्वर, अनन्त, नवमुनि, बाराभुजी, महावीर तथा ध्यान आदि नाम की अनेकों छोटी बड़ी गुफाएं हैं जो उक्त नामों से सुप्रसिद्ध हैं। गुफाओं के द्वारों तथा भित्तियों पर हुई चित्रकारी से भारत की प्राचीन संस्कृति की स्पष्ट झांकी मिलती है। प्रायः गुफाएं इस ढंग से बनाई गई हैं। कि एक व्यक्ति बड़ी कठिनाई से ही अन्दर खड़ा हो सकता है। गुफाओं की बनावट से मालूम होता है कि कायोत्सर्ग मुद्रा में

खड़ा रहने के लिए ही ये अधिक उपयुक्त हैं। गुफाओं के फर्श का शिरोभाग ऊँचा रखा गया है। जिससे सिरहाने की कोई आवश्यकता नहीं रहती। इससे ज्ञात होता है कि मुनि लोग व साधक प्रायः भूमिशयन ही करते थे। गुफाओं के समक्ष या निकट कहीं-कहीं खुले मैदान भी हैं। जिससे ज्ञात होता है कि पहाड़ी के शिखरों पर आध्यात्मिक गोष्ठी के लिए विशाल सभाएं भी होती होंगी। जिनमें परस्पर विचार-विनिमय द्वारा तत्त्व मन्थन किया जाता होगा। विशेष अवसरों पर विराट् उत्सवों का आयोजन भी अवश्य होता होगा। अब तो गुफाओं में जैन श्रमण तो क्या, जैन श्रमण की छाया भी नज़र नहीं आती। खण्डगिरि पर एक दो छोटे- छोटे मन्दिर अवश्य दिखाई देते हैं। कुछ वर्ष पूर्व भगवान पार्श्वनाथ की लगभग १०-११ फोट दिव्य मूर्त्ति खण्डगिरि पर स्थापित की गई थी। गुफाओं की दिवारों पर कहीं अष्ट मंगलों के चिन्ह उपलब्ध होते हैं। जिससे यह सिद्ध होता है कि उड़ोसा में जैन लोग पहले केवल प्रतीक पूजा ही करते थे। क्योंकि गुफाओं की आद्य दिवारों original walls पर किसी भी तीर्थंकर का चित्र उत्कीर्ण नहीं है। जो हैं भी वे सब बाद के हैं। खण्डगिरि तथा उदयगिरि पुस्तक के लेखक देवल मित्र का अभिमत यह है—

Jainism, as practised to those days in this past of the country, did not involve the worship of images. For not a single Jain tirthankar's

Image appears in the Original carvings on the caves.

Udayagiri and Khandagiri
By (Page 14)
Debala Mitra

यह तो चित्र का एक पक्ष है। किन्तु चित्र के दूसरे पक्ष पर भी दृष्टिपात करना होगा। उदयगिरि की हाथी गुफा के मुखद्वार पर उत्कीर्ण खारवेल के अभिलेख Inscription में कलिङ्ग-जिन का उल्लेख मिलता है। जिसे कलिंगसे नन्दराजा कभी ट्राफी Trophy के रूप में उड़ीसा से ले गये थे। खारवेल ने मगध पर आक्रमण किया। और वे कलिङ्ग-जिन को फिर वापिस लाये। खण्डगिरि के सन्निकट कहीं पुनः उसकी स्थापना की गई। उड़ीसा में उस समय के प्रचलित जैन-धर्म में मूर्त्तिपूजा के सम्बन्धमें इतिहास-कारों तथा विद्वानों के अलग-अलग मत हैं। यह मतभेद अभी और ऐतिहासिक गवेषणा की अपेक्षा रखता है। किन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि खृष्टाब्द प्रथम शताब्दी पूर्व तथा उससे भी पहले उड़ीसा में जैनधर्म अपने चरम उत्कर्ष पर था। और इसे इस प्रान्त के राजधर्म के स्वर्ण-सिंहासन पर आरूढ़ होने का गौरव प्राप्त था। खारवेल निस्सन्देह जैन राजा था। उसने जैन धर्म के प्रचार एवं प्रसार में कोई कसर शेष नहीं रखी। जैन होने पर भी वह संकीर्ण नहीं था। वे अन्य मत के देवताओं तथा देवस्थानों का पूरा-पूरा आदर करता था। उसने जैन स्थानों की तरह अन्य मत के मन्दिरों तथा तीर्थों का भी

जीर्णोद्धार करवाया। वह युद्ध तथा शान्ति दोनों में महान था। किसी समय सारे भारत में उसकी तलवार का लोहा माना जाता था। बौद्ध धर्म में सम्राट् अशोक का जो स्थान है वह ही स्थान जैनधर्म में सम्राट् खारवेल का है। खारवेल के महापर्याण के बाद कलिंग की धरती से जैनधर्म भी धीरे-धीरे पर्याण करने लगा। शैव मतके बढ़ते हुए प्रचार ने बौद्ध धर्म को तो जड़मूल से ही साफ कर दिया। किन्तु जैन धर्म के आचार की जड़ें इतनी सुदृढ़ थीं कि इसे समूल नष्ट नहीं किया जा सका। जैन धर्म को सदा से ही शुद्ध चरित्र तथा जीवन की कठोर तपस्या में विश्वास रहा है। एक बात स्पष्ट है कि जैनधर्म की कठोर जीवन-चर्या में जन-मानस की सहज गति नहीं होती। जो उस कठोर साधना का पथिक होता है उसके प्रति आकर्षण, श्रद्धा तथा भक्ति अवश्य प्रत्येक सहृदय मानव को हो जाती है। किन्तु जन मानस स्वयं उसमें प्रविष्ट होने का जल्दी से साहस नहीं करता। जैन धर्म के जटिल सिद्धान्त जल्दी से जन-साधारण के मस्तिष्क में उतर नहीं पाते शैव मत ने जीवन की शान्ति, स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति के सरल, सुगम तथा सुबोध मार्ग जनता के सामने रखे। प्रायः जन हृदय सुगम मार्ग की ओर आकर्षित जल्दी हो जाता है। उड़ीसा की धरती पर जैन धर्म की अवनति तथा शैव मत की उन्नति के अन्य कारणों में से उपर्युक्त कारण भी कम प्रबल नहीं है। शैव मत के प्रचार से जैन धर्म राजकीय गौरव से अवश्य वंचित हो गया। किन्तु

इसे खण्डगिरि जैसे पर्वत शिखरों से मिटाया नहीं जा सका। आज भी इन पहाड़ियों से जैनत्व के उद्घोष सुनाई देते हैं। यह दि० जैनों का सिद्ध क्षेत्र है। प्रायः यहाँ दि० जैनों की ओर से समय-समय पर समारोह होते रहते हैं। एक छोटी सी धर्मशाला भी यहाँ है। हमें दो बार यहाँ ठहरने का सौभाग्य मिला। एक बार तो भुवनेश्वर से जटनी जाते हुए और दूसरी बार जटनी से बारंग की ओर बढ़ते हुए। यहाँ सरकार की ओर से एक छोटा सा निरीक्षण गृह Inspection Bangalow भी है। एक छोटा सा 'खारवेल चिकित्सालय' जैन समाज की ओर से चल रहा है। आस-पास का वातावरण काफी दर्शनीय है। लगभग एक मील के फासले पर तपोवन है। यहाँ एक छोटा सा हाई स्कूल है। जिसमें प्रायः आदिवासियों के बच्चे पढ़ते हैं। एक प्रवचन भी उस स्कूल में दिया। हिन्दी तो कोई समझता नहीं था। केवल वे बच्चे हमारे मुँह की तरफ आश्चर्य से देखते जा रहे थे। उनके मौन चेहरों पर श्रद्धा तथा भक्ति के कुछ लक्षण अवश्य दिखाई देते थे। वे भले ही हमें किसी और रूप में न भी समझते हों, किन्तु वे हमें सन्त के रूप में तो अवश्य पहचानते ही थे। मेरा ख्याल है कि उन्होंने जैन साधु शायद जीवन में पहली बार ही देखे होंगे। बड़ी क्लास के लड़कों तथा अध्यापकों ने अवश्य मेरे विचारों को कुछ समझा। श्री विजय मुनिजी ने एक मधुर गीत की धुन लगाई। समय अधिक हो रहा था। हम जल्दी ही वहाँ से धर्मशाला में आ

गये। भुवनेश्वर के कुछ भाई हमारे साथ थे। धर्मशाला के मनेजर जैन हैं। सन्तों तथा अतिथियों की सेवा का अच्छा ध्यान रखते हैं। धर्मशाला के एक कक्ष में भी एक छोटा सा मन्दिर है। इस तीर्थ के चारों ओर दूर-दूर तक जैन धर्म काअन्य कोई अवशेष चिन्ह दिखाई नहीं देता। जहाँ जैन धर्म राजपद पर प्रतिष्ठित रहा हो वहाँ आज उसे कोई जानता तक न हो, यह कितने दुःख और लज्जा की बात है! वैसे प्रत्येक धर्म में अवनति तथा उन्नति का युग आता रहता है। किन्तु अपने खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिये कौन प्रयत्न नहीं करता? जैन समाज आज कुम्भकर्णी नींद सो रहा है। उसने किस समय कहाँ क्या खोया है? उसे शायद इतना भी मालूम नहीं। मेरा विश्वास है कि यदि सन्त वर्ग अपने-अपने केन्द्रों का मोह छोड़कर सुदूर प्रदेशों में भ्रमण करें तो जैन धर्म को अपना खोया हुआ गौरव पुनः मिल सकता। एक दिन मैं उदयगिरि के एक शिलाखण्ड पर बैठा था। मेरे मन में यही भाव हिलोरें लेने लगे और श्रमण संघ के नाम हृदयोद्गार स्वतः पदों में ढलकर निकल पड़े कुछ इस तरह से —

खारवेल की धरती को फिर आज जगाओ!

उदयगिरि के शैल शिखर से बोल रहा हूँ।
जैन-धर्म की गौरव-गाथा खोल रहा हूँ॥१॥

वीर-धर्म का एक वीर राजा अनुयायी।
जिसने जग में अहिंसा की ज्योति जगाई ॥ २ ॥

युग्म शिखर से सुनता हूँ मैं मूक तराना।
खारवेल के जीवन का इतिहास पुराना ॥ ३ ॥

जैन-जीवन का खारवेल था सफल चितेरा।
अहिंसा का दूर-दूर तक तेज बिखेरा ॥ ४ ॥

दूर-दूर तक चमक रहा था उसका पानी।
सारे भारत की धरती थी उसकी रानी ॥ ५ ॥

कलिंग देश का एक वही बस मुकुट मणि था।
वीरों की गणना में बस वह एक धनी था ॥ ६ ॥

यह युग्म-पहाड़ी है उसी की अमर निशानी।
गाता उसके गान गुप्त गंगा का पानी ॥ ७ ॥

है ललिता प्रासाद मगर लालित्य नहीं है।
है वही आकाश मगर आदित्य नहीं है ॥ ८ ॥

मूक पहाड़ी खड़ी हो जैसे विधवा रानी।
तन पर ओढ़े मलिन चुनरी काली पाषाणी ॥ ९ ॥

एक ओर है खण्ड-गिरि का ऊँचा मन्दिर।
खड़ी है जिसमें पार्श्वदेव की प्रतिमा सुन्दर ॥ १० ॥

दूर-दूर से भावुक हृदय नित ही आते हैं।
यहाँ पर उनके मुकुलित मानस खिल जाते हैं ॥ ११ ॥

इस ओर हैं उदय गिरि की मौन गुफाएं।
द्वार-द्वार पर उत्कीर्ण प्राचीन कलाएं ॥ १२ ॥

हाथी गुफा पर खारवेल का अभिलेख है।
इतिहास के पन्नों की यह अमिट रेख है॥ १३ ॥
उत्कल में है जैन-धर्म की यही निशानी।
विलुप्त हुई है श्रमण-धर्म की अन्य कहानी॥ १४ ॥
हैं सन्तों के आवास मगर अब सन्त नहीं हैं।
भगवन्तों के हैं चरण मगर भगवन्त नहीं हैं॥ १५ ॥
जिस धरती पर जैन-धर्म ने गौरव पाया।
जन-जीवन में हाय! नहीं मिलती अब छाया॥१६॥
अहिंसा का रहा जहाँ पर सदा सवेरा।
हुआ वहीं पर हाय! आज यह घोर अन्धेरा॥ १७॥
अहिंसा की शक्ति वैसे मन्द नहीं है।
उत्कल की धरती में इसकी गन्ध नहीं है॥ १८॥
वाम-पन्थ की पड़ी हुई है चोट करारी।
हैं मिथ्यातम से घिरे हुए वहुधा नर-नारी॥ १९ ॥
महावीर के श्रमणो! इधर अब चरण वढ़ाओ।
खारवेल की धरती को फिर आज जगाओ॥२०॥

हमने पाँच सात दिन यहाँ के शान्त-एकान्त वातावरणका खूब आनन्द लिया। १२ जनवरी की सुबह को हमने जटनी की ओर विहार कर दिया। दोपहर एक शिवालय में काटी और ३ वजे विहार करके शाम के ५ वजे जटनी पहुँच गये। यहाँ हम जैन स्थानक में ठहरे। स्थानक भी केवल दो ही कमरों का। सामने खुला मैदान है। जिसमें तीन चार सौ वहन व भाई

अच्छी तरह बैठकर प्रवचन सुन सकते हैं। यहाँ जैनों के सात आठ घर हैं। इसलिये उड़ीसा में इसे भी जैनों का एक छोटासा क्षेत्र माना जा सकता है। हम यहाँ कुछ दिनों के लिये आये थे किन्तु यहाँ की जनता के धर्म-प्रेम ने इस प्रकार से हृदय को बाँधा कि पूरा एक मास हमारे कदम आगे नहीं बढ़ सके। यहाँ अग्रवाल वैष्णवों के अच्छे-खासे घर हैं। जो सत्संग से बहुत प्रेम रखते हैं और सन्त चरणों से जिनके हृदय में अगाध प्रेम व श्रद्धा है। ये सब लोग हरियाना व राजस्थान से आकर यहाँ बसे हुए हैं। उड़ीया लोग भी बिना किसी भेदभाव के प्रवचन में आते रहे। उड़ीसा में आमिषाहार का प्रचार अवश्य अधिक है कन्तु ईश्वराधन, सत्संग, भक्ति तथा साधु सन्तों के प्रति अनुराग किसी तरह भी कम नहीं है। जटनी में हमें इतनी सफलता मिलेगी, ऐसा कभी सोचा नहीं था। किन्तु यहाँ के जन समुदाय ने अपने श्रद्धा के पुष्पों के सुवर्षण से हमारे अनुमान को सच, अवश्य असत् कर दिया। एक कल्प हो चुकने के पश्चात् भी होली चातुर्मास यहीं बिताने का आग्रह चलता रहा। किन्तु कल्प से अधिक हम ठहरना भी चाहते नहीं थे। इसलिए जनता के श्रद्धा भरे आग्रह की उपेक्षा करके ही हम आगे बढ़ सके। जटनी श्री संघ ने चातुर्मास के लिये भी पुरज़ोर विनति की। और साग्रह यह भी कहा कि "आप अभी यहीं चातुर्मास का निर्णय करके ही जायें।" किन्तु ऐसा तो कैसे हो सकता था। भुवनेश्वर श्री संघ की प्रार्थना तो

पहले से हमारे हृदय कोष में थी। होली चातुर्मास पर ही अन्तिम निर्णय हो सकता था। हमने तो केवल इतना ही कहा "देखिये। हमारा बिचार आन्ध्र की ओर जाने का है। यदि इस वर्ष किसी कारण से दक्षिण की ओर न जा सके तो फिर इधर उड़ीसा में रहना ही होगा। भुवनेश्वर की विनती पहले से है, और जटनी की भावना उसमें और मिल गई है। चातुर्मास तो एक ही जगह होगा। कहाँ होगा ? यह निर्णय पुरी में ही हो सकेगा। क्योंकि होली चातुर्मास पुरी में करने का भाव है" मेरे इन शब्दों से जटनी की जनता को कुछ सन्तोष अवश्य हुआ। और तब कहीं हम जटनी से आगे सरक सके।

जटनी से हमने पीपली की ओर विहार किया। जटनी से पीपली ८ मील है। हमारे साथ लगभग दो सौ (२००) बहन व भाई पैदल चलकर पीपली पहुँचे। मनुष्य श्रद्धा की पाँखों से ही उड़ता है। प्रेम तथा श्रद्धा न हो तो कोई एक कदम भी किसी के साथ चलने के लिये तैयार नहीं होता। पीपली में हम नरसिंह दास अग्रवाल के मकान में ठहरे। पीपली बेशक एक छोटा सा गाँव है किन्तु है एक महत्त्वपूर्ण स्थान। पुरी जाने के लिए तो यहाँ आना ही पड़ता है। यह एक प्रकार का चौराह है। यहाँ से कोणार्क, पुरी, जटनी तथा भुवनेश्वर को मार्ग जाते हैं। इसलिए पीपली में काफी रात तक भी लोगों की चहल-पहल रहती है। हम जहाँ ठहरे हुए थे। उसके ऐन सामने ही बस अड्डा Bus stand है। इसलिए वहाँ ज़रा लोगों का आवागमन

विशेष रहता है। हर गुज़रने वाला हमें खूब ध्यान से देखता था। उनके लिये हम बिल्कुल नये थे। जैसे कि कभी शायद उनकी आँखों ने हमारे जैसे सन्त न देखे हों। इस विषय में एक दो रोचक प्रसंग दे रहा हूँ। आपके मनोरंजन के लिये। शायद मेरे लम्बे चौड़े पन्नों को पढ़ते-पढ़ते आप कभी थक भी जाते हों! लीजिए दो मिनट खिलखिलाकर हंस लीजिए।

(१) "जिन दिनों हमने जटनी से विहार किया। उन दिनों मध्यावधि चुनावों का खूब ज़ोरदार प्रचार Propaganda चल रहा था। हम जटनी से पीपली जा रहे थे। सैंकड़ों बहिन व भाई हमारे साथ थे। अहिंसा, धर्म तथा महावीर भगवान के जयनादों से आकाश गूँज रहा था। एक ओर दो राही जा रहे थे। एक ने दूसरे से पूछा। अरे! यह कैसा जलूस? दूसरा अपनी भाषामें बोला—"किसी राजनैतिक दल का ही लगता है। ये आगे के तो प्रत्याशी हैं और ये सब पीछे इनके समर्थक हैं। और क्या है? अपने-अपने दल का प्रचार कर रहे हैं।" उस लाल बुझक्कड़ ने हमें खूब पहचाना। उस बिचारे का भी क्या दोष! चुनावों के कारण वातावरण ही कुछ ऐसा चल रहा था।

(२) पीपली में रात्रि को प्रवचन रखा गया। ऐन बस स्टैण्ड के सामने। पहला ही दिन था। ४०-५० बहिन व भाई तो बैठे ही थे। प्रवचन चल रहा था। सभी दलों की जीपें प्रचार के लिये चीलों की तरह घूमती-फिरती थीं। प्रत्येक जीप प्रवचन सभा के सामने अवश्य खड़ी होतीं। एक बार एक भाई ने उनसे कहा

"अरे बाबा ! देखो सामने सत्संग हो रहा है। यहाँ क्यों शोर मचाते हो ? ज़रा आगे जाकर बोलो न ? उत्तर मिला "यह सभा देखकर ही तो खड़े हुए हैं। इतने लोग एक जगह हमें कहाँ मिलेंगे। हमें दो मिनट अपनी वोट की बात कह लेने दीजिये। फिर आप सारी रात चाहे सत्संग करते रहें। हम कब मना करते हैं ?" सच, अवसरवादी लोग प्रत्येक अवसर से लाभ उठाने से कभी नहीं चूकते।

(३) दोपहर का समय था। मैं गोचरी के लिये जा रहा था। मेरे साथ एक लड़का था। सड़क बहुत तप रही थी। ज़रा मैं जल्दी-जल्दी जा रहा था। मेरे साथ का भाई तो मेरे से भी तेज़ चल रहा था। एक दुकान पर दो आदमी खड़े थे। मुझे आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे। एक ने बड़ी उत्सुकता से पूछा "अरे ! कौन जा रहा है वह ?" नया सर्जन आया लगता है कोई। कहीं ओपरेशन करने जा रहा है। देखो न, कितनी जल्दी में है। पाओं में जूता भी नहीं। नंगे ही पाओं चला जा रहा है। ज़रूर कोई रोगी सख्त बीमार होगा। जल्दी-जल्दी में जूता भी नहीं पहना। हस्पताल में तो डाक्टर मुँह पर कपड़ा बाँधे कई वार देखे हैं। किन्तु सड़क पर जाते तो पहली वार ही ऐसा डाक्टर देखा है। अपने देश का तो नहीं है यह। विदेश से आया मालूम होता है। लेकिन है जरूर डाक्टर।" हमने एक मिनट रुककर उनकी बातचीत सुनी। कुछ-कुछ उड़ीया तो मैं समझता ही हूँ। मेरे साथ वाला तो खूब

उड़ीया जानता था। सच आदमी अनजाने में किसी को क्या से क्या समझ लेता है।

ये तीन चुटकले आपके मन बहलाने के लिये दे दिये हैं। सच, इनमें से कुछ प्रेरणा लेने जैसी बात है। उड़ीसा में जैन धर्म का प्रचार न होने से जन साधारण जैन मुनियों के आचार-विचार से प्रायः अनभिज्ञ हैं। कुछ पढ़े-लिखे लोग अवश्य जैन धर्म को समझते हैं। किन्तु वे हैं ही कितने ? आवश्यकता है जन-मानस में अपने सिद्धान्तों का प्रकाश भरने की। समूचे समाज का इधर कुछ लक्ष्य हो तो फिर कुछ अच्छा परिणाम निकल सकता है। एक बार की सिंचाई इस धरती को उपजाऊ नहीं बना सकती। आवश्यकता है इसे बार-बार सींचने की, और यह सन्त वर्ग के निरन्तर समागम से ही सम्भव हो सकता है। हम १०-१२ रोज पीपली में रहे। श्री विजय मुनि जी का स्वास्थ्य यहाँ कुछ ठीक नहीं रहा। दन्त-पीड़ा से काफी परेशानी रही। इसलिए भी हमें रुकना पड़ा। प्रवचन प्रतिदिन चलता रहा। कुछ थोड़ा-बहुत प्रचार तो हुआ ही। सहयोगी मुनि का स्वास्थ्य कुछ ठीक हुआ तो हमने पुरी की ओर विहार कर दिया। पीपली से हम पहुँचे सातशंख। यहाँ हम पंचायती क्लब में ठहरे। यहाँ एक घर देहरावासी जैन का है। हम उड़ीसा में जहाँ भी जाते हैं। लोगों के आकर्षण का केन्द्र तो बन ही जाते हैं। नयी चीज़ को देखने के लिए प्रायः लोग उमड़ पड़ते हैं। लोगों को जब मालूम

हुआ तो आस-पास के गाओं के सैंकड़ों लोग पैदल चलकर सातशंखे पहुँच गये। लोगों को जब यह बताया जाता था कि ये महात्मा देहली से पैदल चलकर यहाँ आए हैं और सारे भारत में सदा सब जगह पद-यात्रा करते हुए ही जाते हैं, तो लोगों के आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहता था। और वे बड़ी श्रद्धा तथा आश्चर्य से हमें देखने लगते थे। रात्रि को प्रवचन व भजनों का कार्यक्रम रखा गया। सैंकड़ों लोग जमा हो गये। किन्तु भाषा की वाधा वहाँ भी उपस्थित थी। हिन्दी वे जानते नहीं थे। कुछ शिक्षित वर्ग को अवश्य जैन धर्म का परिचय मिला। किन्तु मैं देख रहा था कि लोगों में कुछ जानने की बलवती इच्छा उभर रही थी। हम एक ही रात वहाँ ठहरे। अगली सुबह हमने आगे विहार किया। चार मील पर साखी गोपाल में कुछ विश्राम लिया और फिर शामको चन्दनपुर पहुँच गये। वहाँ एक पान के बगीचे में ठहरे। इधर नारियल, तथा पान बहुलता से होता है। साखीगोपाल एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। यहाँ एक सुन्दर तथा भव्य सनातन मन्दिर है। पुरी धाम में आनेवाला प्रत्येक यात्री यहाँ अवश्य आता ही है। उसके आने की साक्षी तो मानों यहीं होती है। चन्दनपुर एक कस्बा है। एक रैन बसेरा यहाँ करके अगले दिन लगभग १० बजे हम पुरी पहुँच गये थे। पुरी में हम गोशाला भवन में ठहरे। मार्कण्डेय-सरोवर के निकट। मारवाड़ी स्कूल के अध्यापक

चन्द्रशेखर महापात्र लगभग २०० बच्चों को लेकर काफी दूर तक स्वागत के लिये पहुँचे। इनसे हमारा परिचय चन्दनपुर पान बगीचा में हुआ था। पहली ही भेंट में उन्होंने अपनी अत्यन्त श्रद्धा का परिचय दिया। शायद यह धर्म प्रेम हमें जीवन में कभी भूलेगा नहीं। पुरी में दो घर जैनों के हैं। अच्छे उत्साही परिवार हैं।

हिन्दुओं के बद्रीनारायण, द्वारका, रामेश्वरम् तथा पुरी ये चार धाम सुप्रसिद्ध हैं। शास्त्रों की मान्यतानुसार शेष तीन धामों की यात्रा करने के वाद ही पुरी धाम की यात्रा की जाती है। इस तीर्थ के पुरुषोत्तम क्षेत्र, कुशास्थली, नीलाद्रि, श्रीक्षेत्र, मर्त्य वैकुण्ठ आदि अनेकों अन्य नाम भी हैं। किन्तु यह तीर्थ जगन्नाथ धाम से ही जगत विख्यात है।

पुरी का महत्त्व जगन्नाथ मन्दिर तथा सागर के कारण से ही है। अन्य ऐसा यहाँ कोई आकर्षण नहीं जिसे इसकी विशेषता का आश्रय वनाया जाये। मन्दिर बड़ा विशाल, सुन्दर तथा भव्य है। इसके सिंह, अश्व, बाघ तथा हस्ति ये चार द्वार हैं। इस मन्दिर की ऊँचाई २१४ फीट है। मन्दिर पर कलिंग की प्राचीन कलाओं के कुछ नमूने देखे जा सकते हैं। किन्तु भुवनेश्वर के लिंगराज तथा कोणार्क के सूर्य मन्दिर जैसी भव्य स्थापत्य कला इस मन्दिर पर नहीं है। मन्दिर में श्री जगन्नाथ, वलभद्र तथा सुभद्रा जी की विना हस्तपाद के

तीन मूर्त्तिएं हैं। इस प्रकार की दारुमय मूर्त्तिएं शायद किसी अन्य देवी देवता की कहीं पूजित नहीं होतीं।

जगन्नाथ जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मगध के नन्दवंशीय राजा महापद्मनन्द इन्हें अपने साथ मगध ले गये थे और महाराजा खारवेल इसे वापिस लेकर आए थे। किन्तु सोचने-विचारने की बात यह है कि समस्त इतिहासकार इस तथ्य को एक स्वर से स्वीकार करते हैं कि खारवेल निस्सन्देह जैन राजा था। हाथी गुफा पर अंकित अपने १७ पंक्ति वाले सुप्रसिद्ध अभिलेख में उसने कलिंग-जिन का उल्लेख किया है। जिसे नन्द राजा कलिङ्ग से अपहरण करके ले गये थे। जैन सम्राट खारवेल ने मगध पर आक्रमण किया। और उस कलिंग-जिन को वापिस लौटाकर लाये। खण्डगिरि पर कहीं उसे पुनः स्थापित किया गया।

'श्रीक्षेत्र परिचय' पुस्तक के अनुसार श्री जगन्नाथ जी तथा खारवेल शिलालेखानुसार कलिंग-जिन को मगध नरेश द्वारा अपहरण कर ले जाने तथा खारवेल द्वारा उन्हें फिर वापिस लाने के उक्त दोनों प्रसंगों में पूरा-पूरा साम्य है। प्रश्न होता है कि वह कलिंग-जिन कहाँ विलुप्त हो गया? उसका आज चिन्ह तक नहीं मिलता। वह एक इतिहास की चीज बन चुका है। अवश्य कलिंग-जिन तथा श्री जगन्नाथ जी का ऐतिहासिक सम्बन्ध प्रतीत होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक युग में प्रभाव पकड़ने वाली तथा प्रभुता पानेवाली

संस्कृति अपने से पूर्व संस्कृति के अस्तित्व को मिटाकर उस पर अपने गौरव की प्रतिष्ठा करती रही है। कहीं शैव युग में कलिंग-जिन के साथ ऐसा ही व्यवहार तो नहीं हुआ क्या ? इसके लिए अभी और तटस्थ ऐतिहासिक अन्वेषण की अपेक्षा है।

श्री मन्दिर की चार दिवारी में अनेक देवी देवताओं के बड़े सुन्दर तथा दर्शनीय मन्दिर बने हैं। उत्कलवासियों को तो जगन्नाथ जी पर अनन्य श्रद्धा है ही किन्तु दूर-दूर से भी हजारों यात्री दर्शन करने के लिये यहाँ आते रहते हैं। मन्दिर प्रायः दर्शनार्थिओं से भरा ही रहता है। अस्पृश्य जाति के लोगों को भीतर जाने की आज्ञा नहीं है। उनका मन बहलाने के लिये श्री जगन्नाथ जी की मूर्त्ति सिंहद्वार के सामने रख दी गई है। इसको 'पतित पावन जगन्नाथ जी' कहा जाता है। मालूम होता है कि जात-पात की संकीर्ण मनोवृत्ति के कारण अपना सर्वस्व लुटाकर भी हिंदुजाति को अभी तक भी होश नहीं आया। आज के सभ्य तथा विकसित युग में किसी विशेष जाति के प्रति घृणा का भाव रखना, यह एक मानव जाति का दूसरी जाति के प्रति घोर अन्याय है।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को पुरी में जगन्नाथ जी की रथ यात्रा निकलती है। यह पुरी की सर्वश्रेष्ठ यात्रा कही जाती है।

यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि रथ यात्रा की प्रथा केवल जैनों में ही पाई जाती है। सनातन धर्म में अन्य कहीं भी

किसी भगवान की रथ यात्रा नहीं निकलती। इससे स्पष्ट होत है कि जगन्नाथजो का श्रमण संस्कृति से गहरा सम्बन्ध है।

मन्दिर का समूचा वातावरण बड़ा ही सात्त्विक तथ अहिंसात्मक है। उत्कलवासी प्रायः मत्स्यभोजी हैं किन्त जगन्नाथ जी के पवित्र मन्दिर में आमिष प्रवेश तथा किसी भी प्रकार की हिंसा का कड़ा निषेध है। श्रमण संस्कृति की अहिंसा की पूर्ण छाया मन्दिर में देखी जाती है। मंदिर की प्राचीर मे एक कक्ष में बहुत बड़ी पाकशाला है। जिसमें २०० चूल्हे हैं श्री जगन्नाथ जी के भोज के लिये नैवद्य योग्य अन्न आदि यहां तैयार होता है। पचासों मन चावल यहाँ प्रतिदिन पकता है। और बड़ी सफाई के साथ बनाया जाता है। यह प्रसाद मंदिर के निकट ही बेचा जाता है। लोग इसे बड़ी श्रद्धा से लेकर खाते हैं। पुरी में आने वाले यात्रियों को प्रसाद के रूप में यहाँ शुद्ध भोजन मिल जाता है। दाल-भात की इतनी बड़ी मार्केट market शायद अन्यत्र कहीं देखने में न आती हो।

मंदिर में मुक्ति मण्डप एक वह प्रमुख स्थान है जहाँ विद्वान लोग बैठकर धर्म चर्चा करते हैं। मंदिर के एक द्वार के बाहर एक छोटी सी जैन प्रतिमा भी देखने में आई है। प्रिय मुने! मंदिर का परिचय आपको दो शब्दों में दे दिया है। अब पुरी सागर के किनारे आपको ले जाना चाहता हूँ। समुद्र के तट पर जाते ही हृदय समुद्र की तरह उछलने लगता है। किनारे पर लोगों

की चहल-पहल देखते ही हृदय की सारी उदासी दूर हो जाती है। यह बात मैं जन-साधारण की अपेक्षा से लिख रहा हूँ। सन्त संसार से उदासीन तो रहता है किन्तु वह जीवन में उदास कभी नहीं होता। दूर-दूर तक बिखरी हुई फेनिल नील जलराशि का मंजुल दृश्य किस दर्शक के मन को मुग्ध नहीं कर देता? बहुत से बहन-भाई समुद्र में स्नान करते हुए काफी दूर तक चले जाते हैं। सागर के वक्षस्थल पर छोटी-बड़ी नौकाएं घूमती-फिरती दिखाई देती हैं। मछलीमार मछली पकड़ने के लिए अपनी नौकाएं बहुत दूर तक ले जाते हैं। किनारे पर मछलियों के विभत्स दृश्य प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति के आनन्द को तो छीन ही लेते हैं। अन्य तो सब कुछ यहाँ मनोरम तथा आकर्षक है। किनारे पर यात्रियों के ठहरने के लिये अच्छे-अच्छे होटल बने हैं। 'पुरी होटल' Puri Hotel कुछ नवीन तथा विशेष सुन्दर है। पुरी में अनेकों मठ, धर्मशालाएं तथा अन्य दर्शनीय देवस्थान भी बहुत हैं। जो केवल यहाँ आकर ही देखे जा सकते हैं। लेखनी बिचारी तो क्या क्या लिखेगी? फिर भी कुछ संक्षिप्त सी पुरी की झाँकी आपको दिखा दी है।

हमने होली चातुर्मास यहीं किया। भुवनेश्वर श्री संघ की अत्यन्त आग्रह भरी प्रार्थना को देखते हुए उन्हें चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान कर दी। महावीर जयन्ती के उपलक्ष्य में जटनी में एक द्वितीय अहिंसा सम्मेलन का आयोजन करने का निश्चय भी यहाँ किया गया। पुरी में १८ दिन रहकर हमने वापिस

जटनी की ओर विहार कर दिया। श्री विजय मुनि जी का यहाँ स्वास्थ्य कुछ अच्छा नहीं रहा। दान्त की कई दिनों तक तकलीफ चलती रही। गरमी का प्रकोप भी ज़ोर पकड़ रहा था। इसलिये कोणार्क की तरफ हम नहीं बढ़ सके। वैसे कोणार्क पुरी से गोप के मार्ग से लगभग २५ मील है और पीपली से २८ मील है।

हम पुरी से वापिस पीपळी आए। दो-तीन दिन यहाँ विश्राम लिया। और 'वीर जयन्ती' के निकट जटनी पहुँच गये।

लीजिए, आपको जालन्धर में बैठे-बैठे ही कलकत्ता से पुरी तक की सैर करा दी है। वह देखो, घड़ी ने आठ बजा दिये हैं। पत्र काफी बढ़ गया है, और अधिक पन्ने इसमें मैं जोड़ना नहीं चाहता। पुरी तक की यात्रा तो समाप्त हुई। अब तो केवल पुरी से लौटते कदमों का कुछ हाल चार-पाँच पृष्ठों में लिखना शेष है। उसमें आपको जटनी अहिंसा सम्मेलन की एक संक्षिप्त सी झाँकी देनी है। क्योंकि वह भी हमारी इसी विहार के अन्तर्गत है। अपनी थकी लेखनी को यहीं विश्रान्ति देता हूँ। यथा योग्य वन्दना सुखसाता। सेवा के लिए सदैव हाज़िर हूँ।

आपका
मनोहर मुनि 'कुमुद'
भुवनेश्वर

जटनी (उड़िसा) का द्वितीय अहिंसा सम्मेलन

पत्र !

(१३)

अहिंसा ही स्वयं ब्रह्म है,
शान्त, निर्विकार है।
धरती का यह श्रृङ्गार,
जीवन का प्यार है॥
देवत्व के प्रकाश का,
अक्षय भण्डार है।
वसुधा की अमर-शान्ति का,
यही आधार है॥
जीवन के अन्य व्रत सब
अहिंसा के फूल हैं।
अहिंसा की पूजा के बिना
सब कुछ फिज़ूल है॥

मुनि मनोहर 'कुमुद'

अहिंसा परमोधर्मस्तथाहिंसा परं तपः
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्त्तते
अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम्
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम्
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वाऽऽप्लुतम्
सर्वदानफलं वापि नैतत् तुल्यमहिंसया
देवता तिथि सुश्रुषा सतत् धर्मशीलता
वेदाध्ययन यज्ञाश्च तपो दानं दमस्तथा
आचार्य गुरु सुश्रुषा तीर्थाभिगमनं तथा
अहिंसाया वरारोहे कलाँ नार्हन्ति षोढ़शीम्

(महाभारत अनुशासन पर्व)

अहिंसा परम धर्म है, परम तप है, परम सत्य है। अहिंसा से ही धर्म का प्रादुर्भाव होता है। अहिंसा ही परम संयम है। यही परम दान है, परम यज्ञ और परम फल है, और है परम मित्र। और जीवन का परम सुख। सब यज्ञों में दान किया जाये और सर्व तीर्थों में स्नान किया जाये, उन सब प्रकार के दान व स्नान का फल मिलकर भी अहिंसा धर्म के फल की तुलना नहीं कर सकता।

देवताओं तथा अतिथियों की सेवा सतत् धर्मशीलता, वेदाध्ययन, यज्ञ, तप, दान, दम, गुरु तथा आचार्य की सेवा तथा तीर्थ यात्रा, ये सब अहिंसा धर्म की सोलहवीं कला के भी समान नहीं है।

(महाभारत अनुशासन पर्व)

भुवनेश्वर
२१-७-७१

सरल हृदय श्री भद्र मुनि जी

स्नेह सहित सुखसाता।

श्रद्धेय महाराज श्री जी के चरणार्विन्दों में सादर वन्दना निवेदन करें और सविनय सुखसाता पूछें। कुछ दिन हुए आपको पुरी-विहार का पत्र भिजवाया था। आप के पत्र से ज्ञात होता है कि मेरे समस्त पत्र आपको सुरक्षित मिलते रहे हैं। ओपने लिखा है कि लगते हाथ दो चार पन्ने जटनी अहिंसा सम्मेलन के भी लिख डालें! सो मैं आपकी अभिलाषा की उपेक्षा कैसे कर सकता हूँ ? लीजिए द्वितीय अहिंसा सम्मेलन की भी एक झलक देख लीजिए :—

यह तो मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ कि हम पुरी से महावीर जयन्ती से काफी दिन पहले जटनी (खुरदा रोड़) पहुँच गये थे। जनता की सुविधा को देखते हुए सम्मेलन १० व ११ अप्रेल को रखा गया। जैन स्थानक के साथ ही रसीक भाई ठक्कर के वगीचे में एक भव्य पण्डाल बनाया गया, जो सचमुच अनुपम था। इस सभा मण्डप को बाँधने तथा अलंकृत करने में रसीक भाई तथा विमल कुमार मिश्र जी की सेवाओं को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

सम्मेलन की आवाज़ गाँव-गाँव में पहुँचाई गई। प्रभात फेरी से जटनी की गली-गली अहिंसा के जयनादों से गुँज उठी। उड़ीसा के जाने-माने व्यक्तियों को इस शुभ अवसर पर निमन्त्रित किया गया। राजरानी कनक मंजरी देवी, सदाशिव संस्कृत कालेज के अध्यापक स्वामी राधाकिशन दास, सर्वोदय नेत्री श्रीयुक्ता रमा देवी, प्राणनाथ महान्ती, मिन्टु महाराज तथा उत्कल सर्वोदय मण्डल के सम्पादक श्री सच्चिदानन्द महान्ती आदि समस्त वक्ताओं ने अपनी मनोहर शैली में अहिंसा के बारे में अपने-अपने अनुभव उपस्थित किये। जिन्हें जनता ने वहुत ही रुचि से सुना। सबने भगवान महावीर तथा उनके अहिंसा धर्म के सम्बन्ध में अपनी हार्दिक श्रद्धा व्यक्त की। हज़ारों लोगों का उमड़ता हुआ सागर इस बात का प्रमाण था कि जनता अहिंसा की बात सुनने के लिए कितनी आतुर है! इस सम्मेलन में जैन तथा अजैन सबने बिना किसी भेद भाव से अपना सहयोग दिया। प्रेम तथा सहयोग के इस अद्भुत दृश्य को देखकर सच, बरबस प्रेमाश्रु बरसने लगते थे। यह वास्तविकता है, कोई अत्युक्ति नहीं। कटक तथा भुवनेश्वर के सैंकड़ों बहन व भाई, बहुत संख्या में आए हुए थे। श्री संघ जटनी की ओर से प्रत्येक प्रकार का सुन्दर प्रवन्ध था। किसी को कोई असुविधा नहीं हुई। रसीक भाई ठक्कर ने अपने मकान के द्वार सबके लिए सहर्ष खोल दिये। सरपंच श्री खूँटिया जी के आदेश से वीर जयन्ती के दिन कसाई खाने

श्री मनोहर मुनि जी म० सम्मेलन की एक सभा के अध्यक्ष श्री प्राणनाथ महान्ती से बातचीत करते हुए। पास में खड़े हैं सम्मेलन समिति के मन्त्री श्री सोमनाथ पटनायक।

बन्द रहे । इसके लिये खूँटिया साहब धन्यवाद के पात्र हैं। सम्मेलन की सफलता का अधिकांश श्रेय सम्मेलन समिति के अध्यक्ष कविराज श्री गंगाधर मिश्र तथा मन्त्री श्री सोमनाथ पटनायक जी को है। जिन्होंने दिन रात, समय देकर सम्मेलन को सफल बनाने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न किया। आपकी लगन, उत्साह, कार्यकुशलता तथा योग्यता सदैव स्मृति-पथ पर रहेगी।

श्री खेमराज जी जैन, श्री कांति भाई, श्री केसरी मल जी जैन, श्री मिश्रीलाल जैन, पुखराज जी जैन, श्री नीलकण्ठ पात्र, प्रेमचन्द जी जैन तथा रमाकान्त आदि समस्त भाइयों ने सम्मेलन को शानदार बनाने के लिए रातदिन काम किया। सेवा सदा अविस्मरणीय हुआ ही करती है। फिर ये सेवा निरत जीवन क्यों याद नहीं रहेंगे। धीरु भाई, श्री वैजनाथ जी, श्री राधेश्याम जी तथा श्री मदनलाल जी के प्रेम की संस्मृति सदा आती रहेगी। इतना ही क्यों। हर छोटे-बड़े की सेवा को हम स्मरण करेंगे। क्या भगवान राम ने उस गलहरी को स्नेहमयी दृष्टि से नहीं देखा था जो पुल बाँधने के लिए रखे मिट्टी के ढेर में एक-एक कण लाकर गिराती जाती थी? सेवा सदैव शक्ति के अनुरूप ही होती है। और वह कभी छोटी बड़ी नहीं होती। सेवा के पीछे हृदय की भावना की प्रमुखता रहती है।

प्रिय बन्धु! हमें जटनी की जनता से जो श्रद्धा तथा प्रेम मिला है वह हमारी स्मृति का एक अभिन्न अंग बनकर रहेगा।

सम्मेलन निर्विघ्नता के क्षणों में समाप्त हुआ। और हमनें दो मई May को जटनी से फिर खण्डगिरि की ओर विहार कर दिया। एक रात बीच में लगाकर ३ मई May को खण्डगिरि पहुँचे। इस बार खण्डगिरि ११ दिन लगा दिये। प्रकृति के खुलें हृदय से कुछ हृदय मिल ही जाता है। हमने १४ मई May को फिर कदम आगे बढ़ाया और बारंग आए। इधर पहले कभी कोई सन्त नहीं विचरे। रास्ते में चन्दका आता हैं। एक डाक बंगला यहाँ है। किन्तु हम तो वहाँ रुके नहीं। सीधे बारंग पहुँचे। चन्दका कभी घना जंगल था। किन्तु अब तो सड़क पर कुछ दुकानें नजर आती हैं। एक स्कूल भी यहाँ है। बारंग एक औद्योगिक केन्द्र है। देवकरण जुगलकिशोर झुंझुनूवालों के उड़ीसा इण्डस्ट्री Orissa Industry तथा दुर्गाग्लास फैक्टरी के नाम से वहुत बड़े-बड़े उद्योग हैं। बारंग वास्तव में इन्हीं कारखानों पर ही खड़ा है। हजारों मजदूर यहाँ अपनी उदर समस्या का समाधान करते हैं। इन्हीं लोगों की यहाँ विशेष चहल-पहल है। समूचे बारंग पर झुंझुनूवालों का ही एक मात्र प्रभुत्व है। बारंग से एक मील पर नन्दन कानन है। जो अभी विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। हम यहाँ लगभग १५ दिन ठहरे। रात्रि को प्रतिदिन प्रवचन होता रहा। हम झुंझुनूवालों के इस धार्मिक परिवार की सेवा भक्ति को सच, जीवन में कभी भूल नहीं सकते। जीवन के ये मधुर क्षण हमें सदैव याद रहेंगे।

बारंग से हमने कटक की ओर प्रस्थान किया। कटक यहाँ

से केवल ८-६ मील ही है। कटक में हमने एक कल्प गुजारा। इतने में चातुर्मास का समय निकट आ गया। हमने २५ जून June को कटक से भुवनेश्वर चातुर्मास के लिये विहार किया और २६ जूनको भुंझुनूवालों के इस रमणीक बाग में चातुर्मास के लिए पहुँच गये। पूज्य महाराज श्री जी की आशीर्वाद से चातुर्मास मंगलमय क्षणों में चल रहा है। आगे कैसा रहेगा ? भाग्य कहाँ ले जाएगा ? भावना किधर की होगी ? यह तो सब कुछ भविष्य के गर्भ में है। किन्तु कलकत्ता से यहाँ तक के यात्रा-संस्मरण आपकी आकांक्षा को देखते हुए लिख दिये हैं। मेरी लेखनी की समस्त भूलों को क्षमा करते हुए इन पत्रों को पढ़िएगा और कुछ प्रेरणा तथा मार्गदर्शन लेकर इधर बढ़ने के अवश्य अपने संकल्प बनाइएगा। बस, अधिक क्या ? त्रुटिओं के लिये पुनः पुनः क्षमा। समस्त मुनिवृन्द को यथायोग्य वन्दना सुखसाता। योग्य सेवा लिखते रहिये। आपका ही हूँ। दूर होने से भूलिये नहीं।

आपका

मनोहर मुनि

भुवनेश्वर

(उड़ीसा)

* फिर निवेदन है *

★

(१) संस्मरण का भवन है,

अनुभूति की शिलापर।

प्रवेश इसमें कीजिये,

सहृदयता ले कर।।

(२) संस्मरण के उद्यान में,

खूब घूमिये, फिरिये।

काँटों को छोड़ दीजिये,

बस, फूल ही चुनियें।।

(३) झोली को देख लीजिये,

क्या ले के आए हैं ?।

बिखरे हुए फूल ये,

कितने उठाये हैं ?॥

मुनि मनोहर 'कुमुद'